प्रवक्ता प्रशिक्षण कार्यशाला

कार्य विवरण

(कार्यशाला संख्या—1)

उत्तर प्रदेश के स्नातक व स्नातकोत्तर
महाविद्यालयों के प्रवक्ताओं
के लिए आयोजित
प्रशिक्षण कार्यशाला

16 अक्टूबर से 19 अक्टूबर 1986

आयोजक
उच्च शिक्षा निदेशालय, उत्तर प्रदेश
इलाहाबाद
1986

विषय सूची

		पृष्ठ संख्या
1.	प्राक्कथन	1
2.	शिक्षा निदेशक/उच्च शिक्षा/द्वारा स्वागत भाषण	2 -4
3.	उद्घाटन भाषण : डा0आर0पी0 मिश्र, कुलपति इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद	5 - 8
4.	राष्ट्रीय शिक्षा नीति: 1986:डा0जी0एस0एल0तिवारी	9 -10
5.	नई चुनौतियों के प्रकाश में शिक्षक का दायित्व बोध डा0 चन्द्र विजय चतुर्वेदी	11--13
6.	Preparing for class lectures: Teacher's role in organizing tutorials, Seminars, Group Discussions etc. Dr.S.C. Gupta	14 -16
7.	Utilizing the Available Infra-structure Dr. Y.B. Singh	17 -22
8.	Co-curricular Activities: The role of the teacher. Dr.(Smt.)Hem Lata Swarup	23--25
9.	Hiatus between teaching and research in Higher Education : Dr. T.S. Papola.	26--31
10.	Problems of combining Teaching with Research Shri B.K. Joshi	32--36
11.	Model Lecture : English Literature Prof. A.K. Srivastava	37--38
12.	Hormanal control of plant growth: The Story of plant Hormones Major N.S. Parihar	39--43
13.	Academic and Social relevance of Education Prof. A.D. Pant	44--47
14.	Higher Education--Suggestions for Implementation Prof. K.M. Bahauddin	48--53

Sub. National Systems Unit,
National Institute of Educational
Planning and Aministration
17-B,Sri Aurobindo Marg,NewDelhi-110016
DOC. No.....
Date.....

15. Some Monitoring and corrective Techniques in Educational Management. Prof. K.M.Bahauddin 54-64

16. दूर शिक्षा पद्धति की सामाजिक विश्वसनीयता डा0योगेन्द्र प्रताप सिंह 65-67

17. Introduction to T.V. Dr. M.S. Vist 68

18. The art of communication in Higher Education: Mrs. L.S.S.Day 69-70

19. शिक्षक-विद्यार्थी सम्बन्ध:एक मनोवैज्ञानिक विचारधारा डा0 वीरेन्द्र सिन्हा 71-73

20. Model Lecture : Botany Dr. D.D. Pant 74

21. राष्ट्रीय शिक्षा नीति का क्रियान्वयन:डा0परमानन्द मिश्र 75-77

22. समापन भाषण : डा0 ब्रजेश्वर वर्मा 78-79

23. महाविद्यालय प्रवक्ता प्रशिक्षण कार्यशाला का मूल्यांकन 80-84

प्राक्कथन

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में निरन्तर गिरावट आने के कारण विगत कई वर्षों से यह महसूस किया जा रहा था कि उच्च शिक्षा के अध्यापकों का प्रशिक्षण माध्यमिक स्तर के अध्यापकों की तरह आवश्यक है । उच्च शिक्षा संस्थाओं के नवनियुक्त अध्यापक अपने विषय वस्तु से भलीभांति परिचित होते हैं क्यो कि अधिकतर क्षेत्र में उच्चकोटि के छात्र ही योग्यता के आधार पर महाविद्यालयों में नियुक्त होते हैं किन्तु उन्हें अध्यापक की गरिमा से सम्बन्धित आचरण के मापदण्डों का आभास नही रहता है ।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में इस तथ्य पर विशेष बल दिया गया है कि उच्च शिक्षा के क्षेत्र में पूर्व सेवा तथा मध्य सेवा कालीन प्रशिक्षण होना आवश्यक है । इसी उद्देश्य से उच्च शिक्षा निदेशालय द्वारा माह अक्टूबर 86 में प्रथम महाविद्यालयीय प्रवक्ता प्रशिक्षण का कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया जिसमें कुल 50 प्रवक्ताओं को आमन्त्रित किया गया था । यह प्रयास किया गया कि यह प्रशिक्षण उनमें अपने व्यवसाय के प्रति विश्वास जागृत करने, अध्यापन कार्य के प्रति आस्था पैदा करने तथा नैतिकता एवं मूल्यों का बोध कराने में सहयोग प्रदान करेगा । अत: जिन अनुभवी शिक्षकों, शिक्षाविदों तथा विद्वानों को व्याख्यान देने हेतु आमन्त्रित किया गया था उनके व्याख्यानों का संक्षिप्त रूप संकलित कर इस पुस्तिका में दिया जा रहा है।

उच्च शिक्षा निदेशालय उन सभी विद्वानों, शिक्षाविदों तथा अनुभवी शिक्षकों का आभारी है जिन्होनें इस प्रशिक्षण शिविर में भाग लेकर अपने व्याख्यानों द्वारा नये प्राध्यापकों को प्रशिक्षित किया तथा अपने अमूल्य सुझावों से उन्हें लाभान्वित किया । निदेशालय द्वारा भविष्य में भी समय समय पर इस प्रकार प्रशिक्षण शिविर आयोजित करने का प्रयास जारी रहेगा । मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस पुस्तिका से शिविर में भाग लेने वाले शिक्षक लाभान्वित होगें और वे अपने कार्य को और सफलता पूर्वक करने में अपने को समर्थ पायेगें ।

डा0एस0एस0खन्ना
शिक्षा निदेशक उच्च शिक्षा
उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद

प्रवक्ता प्रशिक्षण कार्यशाला

(दिनांक 16 से 19 अक्टूबर, 1986)

उद्घाटन सत्र दिनांक 16-10-86 पूर्वान्ह

उच्च शिक्षा निदेशालय द्वारा प्रदेश के विभिन्न महाविद्यालयों के नव-नियुक्त प्रवक्ताओं के प्रशिक्षण हेतु आयोजित प्रथम प्रशिक्षण कार्यशाला में 30 प्रवक्ताओं ने भाग लिया । इलाहाबाद विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान व्याख्यान कक्ष में आयोजित इस गोष्ठी का उद्घाटन वृहस्पतिवार दिनांक 16 अक्टूबर 1986 को पूर्वान्ह 10.45 बजे विश्वविद्यालय के कुलपति , डा0आर0पी0मिश्रा द्वारा किया गया , उद्घाटन समारोह में शिक्षाविद , विश्वविद्यालय के प्रोफेसर, शिक्षा विभाग के अधिकारी प्राचार्य , प्राचार्या एवं गणमान्य नागरिक उपस्थित थे ।

डा0सतीश चन्द्र गुप्त, शिक्षा निदेशक(उच्च शिक्षा) द्वारा स्वागत भाषण

"आज हम चार दिवसीय प्राध्यापक प्रशिक्षण कार्यशाला का आरम्भ कर रहे हैं । बहुत समय से मेरा विचार था कि बदलती मान्यताओं, परिस्थितियों व स्थिति को देखते हुये यह आवश्यक है कि हम अपने नये अध्यापकों को अध्यापन-व्यवस्था एवं अध्यापन में नई तकनीकों के प्रयोग की आवश्यकता का बोध करवायें । निदेशालय के लिये यह तो सम्भव नहीं है कि वह विभिन्न विषयों के प्रवक्ताओं को विषय विशेष में विशिष्टीकृत ज्ञान देने हेतु- वनस्पति विज्ञान में नवीनतम खोजों या अर्थशास्त्र की नवीन प्रवृत्तियों का ज्ञान देने के लिये कार्यक्रम आयोजित करें, इस कार्य के विशेषज्ञों द्वारा विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की सहायता से किये जाने की आवश्यकता है । हमारे कार्यक्रम के मुख्य उद्देश्य का अन्दाज लगाने के लिये आपके सामने एक लघु-कथा कहता हूँ । किसी राजा के दरबार में एक बहुरूपिया रोज नये भेष रखकर आता था । वह पहचान तो लिया जाता किन्तु इनाम पाता था, एक बार राजा ने उससे कहा, तुम ऐसा रूप धारण करों कि मैं तुम्हें पहिचान न सकूँ । राजा की आज्ञा शिरोधार्य कर बहुरूपिया दरबार से चला गया । कुछ दिनों बाद शहर में यह खबर फैली कि एक सिद्ध महात्मा आये हैं जो किसी से कुछ नहीं लेते ।

जब महात्मा की ख्याति राजा तक पहुँची तो वे भी महात्मा के दर्शन के लिये पहुंचा,- महात्मा ने आखें खोली और राजा ने उन्हें एक हजार स्वर्ण अर्पण की, महात्मा ने इशारे से बताया कि वह सब गरीबों में बांट दी जावें । राजा महात्मा का दर्शन कर लौट आया ।

दो तीन दिन बाद महात्मा दरबार में पहुंचे । महाराजा उन्हें प्रणाम करने के लिये उठ खड़े हुये । महात्मा ने उन्हें रोकते हुये कहा"महाराज, मैं तो आपका बहुरूपिया हूँ । आपने इस बार मुझे पहचाना नहीं । अब आप इनाम में मुझे एक सौ स्वर्ण मुद्रायें दीजिये । महाराजा ने कहा, मैंने पहले तुम्हे एक हजार स्वर्ण मुद्राये दी थी । उन्हें न लेकर तुमने वे सब गरीबों में बंटवा दी, अब तुम एक सौ मुद्रायें मांग रहे हो, ऐसा क्यों? सन्यासी बोला: महाराज, दो दिन पूर्व मैंने सन्यासी का वेश धारण किया था । यदि उस रूप में मै आपसे स्वर्ण मुद्राये ले लेता तो वह एक सन्यासी के अनुरूप न होता । लोगों की आस्था सन्यासियों से उठ जाती , मेरा हक तो केवल सौ स्वर्ण मुद्राओं पर ही बनता है ।

आज ऐसी ही कुछ स्थिति है, आप चाहें इच्छा से, चाहे अनिच्छा से अध्यापक बने हैं तो आपका आचरण भी वैसा ही होना चाहिये । आपको यह ध्यान में रखना चाहिये कि समाज को आपसे क्या अपेक्षायें है । आज का युग ज्ञान एवं विज्ञान का विस्फोट का युग है । फोटोग्राफी के आविष्कार के बाद उसके व्यवहारिक प्रयोग में आते आते एक शताब्दी लग गई थी । टेलीफोन के आविष्कार और उसके व्यवहारिक प्रयोग के बीच 60 वर्ष का अन्तराल था । ट्रांजिस्टर क्रिस्टल के आविष्कार के केवल दस वर्ष बाद उसका व्यवहारिक प्रयोग होने लगा । आज जो भी आविष्कार होता है, उसके पूर्व कि वह किताबों में आकर पढ़ाया जाये, उसका व्यवहारिक प्रयोग आरम्भ हो जाता है । क्या हमारे अध्यापक ज्ञान की विभिन्न शाखाओं से सम्बन्धित समसामयिक आविष्कारों, घटनाओं से अपने विद्यार्थियों को अवगत करवाते है । उदाहरणार्थ हमारे राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र या सैन्य विज्ञान के अध्यापक क्या अपनी कक्षा में रूस, अमेरिका, निशस्त्रीकरण वार्ता की असफलता के विश्व : राजनीति पर प्रभाव की चर्चा करते हैं । यदि नहीं तो वे वास्तविक अर्थ में अपने कर्तव्य का पालन नहीं करपाते हैं । अध्यापक का कर्तव्य अपने विद्यार्थी में ज्ञान के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न करना है । विश्व में हो रही

घटनाओं से उन्हें अवगत करवाना है - अतः अध्यापक को स्वयं जिज्ञासु बना रहना है , तभी वे अपने छात्रों को कुछ दे सकते हैं ।

इस कार्यशाला का उद्देश्य अध्यापक में यही जिज्ञासा बनोये रखना है । विभिन्न क्षेत्रों के विद्वानों एवं विशेषज्ञों को इसमें आमंत्रित किया गया है, हमारे बीच आज मुख्य अतिथि के रूप में विद्वान कुलपति, डा०आर०पी०मिश्रा उपस्थित हैं, शैक्षिक एवं प्रशासनिक दोनों ही क्षेत्रों में आपका दीर्घ- अनुभव है। इलाहाबाद विश्वविद्यालय से भूगोल विषय में स्नातकोत्तर उपाधि प्राप्त करने के बाद आपने मेरीलैन्ड विश्वविद्यालय से पी०एच-डी० की उपाधि अर्जित की । इस समय आप प्रदेश के एक शताब्दी पुराने विश्वविद्यालय- इलाहाबाद विश्व विद्यालय का संचालन कर रहे हैं । मैं उच्च शिक्षा निदेशालय की ओर से डा०मिश्र का हार्दिक स्वागत एवं अभिनन्दन करता हूँ । इस कार्यशाला के आयोजित किये जाने में डा०मिश्र ने हमें प्रोत्साहित किया तथा विश्वविद्यालय की ओर से जो सुविधायें मिल सकती थी, वह हमें दी । इसके लिये हम उनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करते हैं । वनस्पति विज्ञान विभाग से मेरा पुराना सम्बन्ध रहा क्योंकि मैं इसी विषय का छात्र तथा अध्यापक रहा हूँ । इस विश्वविद्यालय के वनस्पति विज्ञान विभाग के पुराने एवं वर्तमान विभागाध्यक्ष से मैंने उनके व्याख्यान कक्ष जिसमें आप बैठें हुये है,- का उपयोग कार्यशाला हेतु करने की अनुमति मांगी, उन्होने हमें यह सुविधा दी, इसके लिये हम उनके आभारी हैं ।

मैं सभी आमंत्रित विद्वानों एवं उपस्थित अतिथियों का अभिनन्दन करता हूँ । साथ ही मैं अपने मुख्य अतिथि के प्रति पुनः आभार व्यक्त करता हुआ उनसे कार्यशाला का उद्घाटन करने हेतु निवेदन करता हूँ ।

उद्घाटन भाषण

डा०आर०पी०मिश्र,
कुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

माननीय गुप्त जी व सार्थियों,

शिक्षा निदेशक श्री गुप्ता जी ने जब इस कार्यशाला के आयोजन के बारे में मुझे बताया, तो मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई, इसलिए कि व्यक्ति समाज के जिस सेक्टर में काम करता हो, वहां उसे अपने ज्ञान को अपग्रेड करना आवश्यक है । आज विश्व-विद्यालयों में सतत् शिक्षा की योजनाएं चल रही है । हम बहुधा यह सोचते है कि अध्यापकों के लिए यह योजनाएं नहीं है । हमारे शिक्षित वर्ग में एक बहुत बड़ा तबका यह सोच कर बैठा है कि उसे आगे पढ़ने की आवश्यकता नहीं है । यही धारणा समाज में पतन का द्योतक है जिस समाज में लोग यह सोच बैठे कि उन्हें तो केवल नेतृत्व करना है, वहां पर अनुयायी (Led) कोई नहीं रहता और ऐसा समाज पतनोन्मुख होता है । हर क्षेत्र में व्यक्ति को अपने ज्ञान को बढ़ाने की निरन्तर आवश्यकता है ।

इस शिक्षक प्रशिक्षण कार्यशाला से दो विशिष्ट फायदे होगें । इसमें भाग लेने वाले नये और पुराने अध्यापक शैक्षिक एवं समस्याओं पर विचार करेगें । इस आयोजन से वे शिक्षा के क्षेत्र में कुछ नई बातें भी सीखेगें । वास्तव में एक बहुत अच्छी योजना प्रारम्भ की गई है ।गुप्त जी इस योजना को और बड़ा रूप देने के लिए शासन को कहेगें, क्योकि ऐसे प्रशिक्षण केवल महाविद्यालय के अध्यापकों के लिए ही नही बल्कि विश्वविद्यालयों के प्रोफेसरो और कुलपतियों के लिए भी आयोजित किए जाने चाहिये।

इस कार्यशाला में छः विषय रखे गये है । पहला है नई शिक्षा नीति पर विचार विमर्श । आज कुछ लोगों द्वारा नई शिक्षा नीति को समझे बिना ही उसका विरोध किया जा रहा है । नई शिक्षा नीति के दस्तावेज में कुछ बातें निर्दिष्ट है और कुछ अनिर्दिष्ट । पर इतना तो स्पष्ट है कि शिक्षा नीति जो भी हो, उसके महत्वपूर्ण तत्व है, पहला यह है कि अध्यापक पढ़ावें एवं विधार्थी पढ़े । यदि यही मूल बात न हो तो किसी भी शिक्षा नीतिका महत्व नहीं रह जाता । दूसरा हमारे पाठ्यक्रम अब पुराने हो चुके है उन्हें समाज की मान्यताओं और जरूरियातके अनुसार बनाना है ।

जब तक शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक का रोल नहीं बदलता, शिक्षा का उन्नयन नहीं हो सकता , मेरी समझ से आज चिन्ता का एक विषय यह है कि अध्यापक में आत्म सम्मान की कमी आ रही है । वह स्वयं को अध्यापक कहने में शर्म महसूस करता है । समाज की मान्यताएं आज अर्थोन्मुखी हो चुकी है, और इन मान्यताओं को बदलने की क्षमता और ललक आज के अध्यापक में नहीं रह गई हैं। मैं समाज को दोष नहीं देता, यदि आज अध्यापक के रूप में हम अपना आत्म सम्मान कायम रखें, अध्यापक के रूप में अपने दायित्व और भूमिका के प्रति जागरूक रहें, केवल धन से ही अपने सम्मान और सफलता को न आकें, अपनी मान्यताएं बनायें, अपने अध्यापन कार्य के प्रति वफादार रहें तो हमें लोगों से सम्मान मिलेगा, आदर मिलेगा ।

आज शासन द्वारा गुणात्मकता (Quality) के स्थान पर संख्या (Quantity) को महत्व दिया जा रहा है जिस महाविद्यालय में अधिक विद्यार्थी हैं, वह बड़ी संख्या है, कम है तो छोटी है । शिक्षा में गुणात्मक सुधार अध्यापक ही ला सकता है । आज इक्कीसवीं सदी की तैयारी करने में हमें शिक्षा को भी उसके अनुरूप बनाना है । देश को हाई टेक्नालाजी में अन्य विकसित देशों के बराबर लाना है । हम यह प्रयास करें कि शिक्षा सब को मिले, पर इसका भी ध्यान रखें कि क्वालिटी प्रोडक्ट की संख्या में कमी न हो , आज संख्यात्मक दृष्टि से यह कहना चाहे सही हो कि हम विज्ञान और तकनीकी विशेषज्ञों की संख्या की दृष्टि से विश्व में तीसरे स्थान पर हो, गुणात्मक दृष्टि से यह सही नहीं है । हमें प्राथमिक से हाई स्कूल स्तर तक शिक्षा का प्रसार करना है और दूसरी ओर उच्च शिक्षा के क्षेत्र में गुणात्मकता की वृद्धि पर ध्यान देना है । वर्तमान में केवल हाई टेक्नालाजी तथा उत्कृष्ट प्रबन्ध (Management) से ही विकास सम्भव है । हमें उसे उच्च शिक्षा का अंग बनाना है, चाहे कुछ लोग उसे Elitist Education ही कहें ।

हमें कुछ ऐसा रास्ता निकालना होगा जिससे यह मेधावी छात्रों के लिए भी कुछ ऐसे विशेष प्रोग्राम चलावें, जैसे अनुसूचित जाति, जनजाति, पिछड़ी जातियों के विद्यार्थियों के लिए आयोजित किए जाते है, यदि प्रतिभावान विद्यार्थियों की प्रतिभा में और निखार लाना हो, तो उसके लिए विशिष्ट प्रोग्राम चलाया जाना आवश्यक है । अध्यापक को स्वयं इस दिशा में सजग रहना होगा कि वह मेधावी छात्रों को प्रोत्साहित करने उन्हें आगे बढ़ाने का सक्षम साधन बने ।

इसी प्रकार अध्यापन विधि में भी परिवर्तन आवश्यक है, आज अध्यापक द्वारा कक्षायें न लिया जाना कारण (Cause) नहीं वरन (Symptom) है किसी deep-seated madady का, और कारण है अध्यापक को अकादमिक स्वतंत्रता न होना- वह क्या पढ़ावें, किस प्रकार पढ़ावें, इसका निर्धारण अध्यापक स्वयं नहीं करता; यदि कोई अध्यापक इस दिशा में कुछ करना भी चाहता है, तो विभिन्न अकादमिक (bodies) से स्वीकृत होते-होते उसे इतना समय बीत चुकता है कि उस पाठ्यक्रम की उपयोगिता ही नहीं रह जाती। आज अध्यापकों का एक बहुत छोटा सा वर्ग ही ऐसा है, जो कक्षायें नहीं पढ़ाता। अधिकांश अध्यापक अपने अध्यापन कार्य के प्रति जगरूक है। आज आवश्यक है कि सबसे पहले अध्यापक को अकादमिक स्वतंत्रता स्वयात्तता मिलनी चाहिए जब अध्यापक को यह स्वायत्तता नहीं मिल रही है, तो स्वायत्त महाविद्यालयों की बात करना व्यर्थ ही है। आज कक्षायें न लिये जाने का कारण अध्यापक की गुणवत्ता में गिरावट नहीं, वरन यह है कि उसे अकादमिक स्वतंत्रता व सम्मान प्राप्त नहीं है आज अध्यापकों के विभिन्न संघ और संगठन अपने वेतन मानों व भत्तों के लिए बाते अवश्य करते हैं किन्तु अपने सम्मान, स्वायत्तता की रक्षा के सजग रहें। विद्यार्थियों के बारे में हमारी मान्यता कुछ ऐसी बन गई हैं कि छात्र बदमाश है और उन्हें पुलिस के बल पर ही नियंत्रित रखा जा सकता है। यह गलत है आज शिक्षा पर बजट का अधिकांश भाग शिक्षकों, कर्मचारियों के वतन-भत्तों पर ही व्यय होता है। छात्र छात्राओं के विकास-उनके विविध कार्यक्रमों के लिए कुछ भी नहीं रहता, छात्र क्रिया कलापों को जैसे हमनें अपनी शिक्षा व्यवस्था से बाहर मान लिया है।

विद्यार्थियों के एक छोटे से वर्ग को छोड़कर हमारे अधिकांश छात्र आज भी अच्छे है पर विडंबना यह है कि आज शिक्षा बजट का अधिकांश वेतन एवं व्यवस्था पर हो व्यय किया जाता है, छात्रों के शिक्षणेत्तर कार्यक्रमों, उसको सृजनात्मक प्रतिभा को रचनात्मक दिशा देने की योजनाओं में नहीं, ऐसा प्रतीत होता है जैसे विद्यार्थी को हो हमने शिक्षा व्यवस्था से बाहर समझ लिया है. एक कुलपति के रूप में मैं अनुभव करता हूं कि आज मैं हर किसी व्यक्ति से

मिलने के लिए समय दे सकता हूं, देता हूं पर एक अच्छे विद्यार्थी से मिलने का समय नहीं देता, उच्च शिक्षा के प्रशासन में जुटे व्यक्ति यदि जोखिम लें और इस प्रवृत्ति को बदलें--विद्यार्थियों को प्रेरित करें, तो मेरे विचार से छात्र अनुशासन में अवश्य सुधार होगा।

अध्यापक के लिए समाज में आदर प्राप्त करने हेतु आत्मालोचन एवं आत्ममूल्यांकन करना जरूरी है। आज अध्यापक कैरेक्टर रोल नहीं चाहते, वे विद्यार्थी के आलोचना सुनना नहीं चाहते, यदि विद्यार्थी कक्षा में उनसे प्रश्न करें, तो वे इसे तक अपनी तौहीन समझते हैं। क्या अध्यापक अपने क्लास रूम लैक्चर का विद्यार्थी से मूल्यांकन करवाने को तैयार हैं वास्तव में जब तक हम अपनी कमजोरियों से अवगत न हों, तब तक हम अपने में सुधार नहीं कर सकते और कमियां तो सभी में है, पूर्णता किसी में नहीं, अध्यापक बन जाने का यह अभिप्राय नहीं कि अब उसे कुछ नहीं सीखना है, वह बौद्धिक निर्माण की स्टेज पा चुका है।

इस कार्यशाला में आए नवयुवक अध्यापक आत्म मूल्यांकन करें, अपनी कमियां दूर करने के लिए सजग रहें- अपने विषय के ज्ञान के साथ साथ अन्तर्विषीय अध्ययन पर जोर दें। मैं विश्वासपूर्वक यह कह सकता हूं कि जो नवयुवक अध्यापक बौद्धिक उपलब्धियों का लक्ष्य लेकर आगे बढ़ने की क्षमता रखते हैं, उनके लिए विश्व में अवसरों और सुविधाओं की कोई कमी नहीं है।

मैं इस कार्यशाला की सफलता की कामना करता हूं।

बृहस्पतिवार अक्टूबर 16, 1986: पूर्वान्ह सत्र

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986

डा0बी0एम0एल0तिवारी
संयुक्त शिक्षा निदेशक (उ0शि0)
उच्च शिक्षा निदेशालय,
उत्तर प्रदेश, इलाहाबाद।

भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही उच्च शिक्षा पर बल दिया जाता रहा है। उस समय आज की तरह परीक्षाओं और उपाधि की व्यवस्था नहीं थी। पूर्ण शिक्षा की व्यवस्था विद्वान ऋषि मुनियों के गुरुकुल आश्रमों में थी। पाणिनि, कौटिल्य, चरक प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्र तक्षशिला के स्नातक थे। उत्तर प्रदेश में वाराणसी सदैव से धार्मिक शिक्षा एवं दर्शन का प्रमुख केन्द्र रहा है। मध्यकालीन भारत में दिल्ली लाहौर, बदायूं रामपुर, लखनऊ, जौनपुर तथा इलाहाबाद उच्च शिक्षा के प्रमुख केन्द्र रहे हैं। उत्तरी भारत में काशी, नादिया, मथुरा, प्रयाग हरिद्वार अयोध्या में हिन्दुओं के उच्च कोटि के विद्यापीठ थे।

आरम्भ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने शिक्षा पर विशेष ध्यान नहीं दिया परन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक से ही ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार के साथ साथ अंग्रेजी भाषा जानने वाले अधीनस्थ भारतीय कर्मचारियों की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। राजाराम मोहन राय के प्रयास से वर्ष 1917 में कलकत्ता में हिन्दू कालेज की स्थापना हुई। ब्रिटिश पार्लियामेन्ट ने शिक्षा के विकास को सुव्यवस्थित एवं निश्चित दिशा प्रदान करने के उद्देश्य से वर्ष 1854 में चार्ल्स वुड की अध्यक्षता में एक समिति गठित की। स्वतन्त्रता प्राप्ति पूर्व उत्तर प्रदेश में 5 विश्वविद्यालय तथा 16 महाविद्यालय का प्रादुर्भाव हो चुका था। सम्प्रति उत्तर प्रदेश में 19 विश्वविद्यालय तीन डीम्ड विश्वविद्यालय तथा 403 महाविद्यालय है जिसमें 49 राजकीय महाविद्यालय हैं।

§2§

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कदम 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति थी जोकि कोठारी कमीशन§1964-66§ की संस्तुतियों के आधार पर केन्द्रीय सरकार ने लागू की थी। पूरे देश में शिक्षा की समान संरचना और लगभग सभी राज्यों द्वारा सिद्धान्त रूप में 10+2+3 की प्रणाली को मान लेना तथा शिक्षकों की दशा में सुधार 1968 की शिक्षा नीति की सबसे बड़ी देन है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के पैरा 1-9 में यह स्वीकार किया गया है कि 1968 की शिक्षा नीति के अधिकांश सुझाव कार्यरूप में परिणत नहीं हो सके। राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में उच्च शिक्षा में गिरावट से बचाने तथा उसे पहले से अधिक गतिशील बनाने की परिकल्पना की गयी है। इस नीति में निम्न कार्यक्रमों पर बल दिया गया है-

§1§ स्नातक स्तर पर +3 प्रणाली का कार्यान्वयन तथा पाठ्यक्रमों का पुनर्निर्माण।

§2§ वर्तमान विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों का सुदृढ़ीकरण एवं प्रसार।

§3§ शिक्षक प्रशिक्षण अनुसंधान हेतु प्रोत्साहन।

§4§ To make the system work शिक्षा व्यवस्था को कारगर बनाने, कार्य क्षमता में सुधार तथा कार्य दिवस का निर्धारण।

§5§ स्वायत्त महाविद्यालयों की स्थापना।

§6§ ओपेन यूनीवर्सिटी तथा अनौपचारिक शिक्षा§पत्राचार पाठ्यक्रम, सम्पर्क शिक्षण केन्द्र।

§7§ सेवा को डिग्री से असम्बद्ध किया जाना।

§8§ राज्य स्तरीय विश्वविद्यालय सलाहकार समिति का गठन।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में लगभग वही संस्तुतियां की गयी है जो कि 1968 की शिक्षा नीति में थीं। इस बात से सभी सहमत होंगे कि कोई भी नीति बना ली जाय जब तक इसे कार्यान्वित करने वाले निष्ठापूर्वक उसका कार्यान्वयन नहीं करेंगे तथा आवश्यक वित्तीय संसाधन शासन द्वारा उपलब्ध नहीं कराये जायेंगे, ऐसी स्थिति में कोई भी नीति कारगर नहीं होगी।

बृहस्पतिवार 16 अक्टूबर, 1986 पूर्वान्ह सत्र

नयी चुनौतियों के प्रकाश में शिक्षक का दायित्व बोध

डा० चन्द्र विजय चतुर्वेदी,
प्राध्यापक रसायन विज्ञान,
काशी नरेश राजकीय
महाविद्यालय,
ज्ञानपुर वाराणसी

कोठारी आयोग (1964-66) ने शिक्षा और राष्ट्रीय विकास शीर्षक से शिक्षा आयोग की जो रिपोर्ट प्रस्तुत की थी उसका पहला ही वाक्य है "भारत के भाग्य का निर्माण इस समय उसकी कक्षाओं में हो रहा है" निश्चय ही यह कथन अत्युक्ति नहीं है। आज का समाज स्पष्टत: दो वर्गों में विभाजित है। एक शिक्षित जिसे सभ्य एवं सुसंस्कृत होना चाहिए। दूसरा अशिक्षित जिसे गंवार के रूप में परिभाषित करते हैं। शिक्षा की सार्थकता में सार्थकता अर्थात् रेलिवेन्स को समाज के हर वर्ग हर व्यक्ति ने अलग अलग अपने स्वार्थ के दायरे में परिभाषित करने का प्रयास किया। आजादी के बाद समाज के प्रभु सत्ता सम्पन्न उच्च वर्ग ब्यूरोक्रेसी व्यावहारिक शिक्षा शास्त्री ने इस सार्थकता को राष्ट्र और समाज के बजाय अपने पक्ष में सार्थक करने के भी प्रयास किये हैं। हिन्द स्वराज्य में गांधी जी ने लिखा--"शिक्षा का अर्थ क्या है? अगर उसका अर्थ अक्षर ज्ञान हो तो वह एक हथियार बन जाती है। उसका सदुपयोग अथवा दुरुपयोग दोनों हो सकता है। आजादी के बाद हम मास एजूकेशन की ओर अग्रसर हुए। कोठारी आयोग इस दिशा में एक सार्थक प्रयास रहा है। शिक्षण संस्थाओं के प्रति छात्र प्राइमरी स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय स्तर तक भावनात्मक लगाव नहीं उत्पन्न कर पाता।

किसी भी शिक्षा नीति की क्रियान्वयन में शिक्षक की भूमिका ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। कभी अध्यापक समाज को नेतृत्व प्रदान करता था। आज उसकी शक्ति में ह्रास हुआ है। आज का शिक्षक मानसिक गुलामी से मुक्त नहीं है शिक्षण एक सतत प्रक्रिया है यह यदि है,

....2

तपस्चर्या है। शिक्षक किसी पक्ष का आचार्य होता है। यह कटु सत्य है कि आज शिक्षक समुदाय अपने कार्य को समर्पण की भावना से नहीं कर पा रहा है जो उससे अपेक्षित है। ज्ञानार्जन के प्रति वह उतना जिज्ञासु नहीं रह गया जितना कि उसे होना चाहिए। शिक्षक को अपने आप स्वयं प्रतिष्ठित करना होगा जैसे विश्वामित्र और चाणक्य एक आचार्य के रूप में अपने को प्रतिष्ठित किये थे। शिक्षक कई वृत्तों का केन्द्र होता है। जैसे छात्र-शिक्षक वृत्त, महाविद्यालय शिक्षक वृत्त समाज शिक्षक वृत्त, तथा व्यवस्था शिक्षक वृत्त। शिक्षण का सबसे कोमलशील/सहज छात्र है। शिक्षक का ध्यान छात्र के मनोवैज्ञानिक विकास पर ही केन्द्रित होना चाहिए। कक्षा में शिक्षक अपने दायित्व का निर्वाह दक्षता ज्ञान के विस्तार और गरिमायुक्त व्यक्तित्व से ही कर सकता है। शिक्षक का पतन वहीं से प्रारम्भ होता है जब वह कक्षा में पढ़ाने से भागता है। मात्र कक्षा में लेक्चर देकर, नोट लिखाकर शिक्षक अपने दायित्व से मुक्त नहीं हो जाता। छात्रों की क्षमता विकसित करने, उनमें चिंतन-मनन की प्रवृत्ति को आयाम जोड़ने में अध्यापक का सार्थक साहचर्य अधिक प्रभावी होता है। महाविद्यालय प्रतिष्ठा की वृद्धि और उसकी रक्षा का दायित्व शिक्षक का दूसरा महत्वपूर्ण दायित्व है। महाविद्यालय की प्रतिष्ठा चार पायों पर टिकी होती है-- शिक्षण, अनुशासन परीक्षा तथा शिक्षणेत्तर कार्यकलाप। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षक अपने वैचारिक मतभेद--व्यक्तिगत आग्रह-दुराग्रह के संबंध में छात्र और महाविद्यालय को न घसीटे। शिक्षक की सफलता का मापदंड न केवल परीक्षाफल बल्कि उस छात्र का चरित्र और गुण भी है जिसे वह समाज को सौंपता है। शिक्षक ही विद्यालयों को, छात्रों को उस समाज के साथ जोड़ सकता है जहां वे विद्यालय स्थित है। शिक्षण के अभ्यासक्रम को जीवन के साथ इस तरह सम्बद्ध करना है जिससे

वह जनता की भावनाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शिक्षण को इस प्रकार विकसित करना चाहिए जिससे वह उत्पादक और उत्पादन की शक्ति बढ़ा सके सामाजिक और राजनैतिक एकता को प्राप्त कर सके और आधुनिकीकरण की प्रक्रिया को बढ़ा सके तथा सामाजिक नैतिक तथा आध्यात्मिक मूल्यों को विकसित कर सकें।

Thursday Oct. 16,1986: Afternoon Session

Preparing for Class-Lectures: Teacher's role in organizing tutorials, Seminars, group discussions etc.

By: Dr. S.C.Gupta,
Director,Higher Education,U.P.
Allahabad.

In 85-86 there were 86,000 student in Universities. 3,49,000 in colleges(5 times) and But the U.G.C.grant was 1,05,000 for Universities, 30,000 for Private Colleges and 5,000 for Govt. Colleges. In 206 colleges the total strength of students is less than 500.

It is important that the strength of such colleges should be increased according to their in-take capacity. One of the fundamental postulates of the NEP is that the system must be made to work. A different culture is to be evolved- Work-culture. It can not be forced upon somebody. It must come from within. We had formulated an educational policy in 1968, why is it necessary what we should frame another policy after 18 years. In the 68 policy, it was emphasized that we must assess aur performance after every five years and formulate policys for next five years. We did neither that is why the need to reestablish the 'cation policy. Orissa, U.P.Himachal Pradesh have not yet accepted + 3-degree course. Some of the important tenants of the NEP 1986 are as follows:-

1. Save education from degradation.
2. Improvement of examination system.

-----2

3. Opening Autonomous colleges and autonomous departments within the University- so that they proceed towards excellence Autonomy should go along with accountability.

4. Teaching of Teachers - In the changing world, with ever-increasing realm of knowledge, it is necessary that our teachers should be reoriented from time to time so that they are freed from the rut.

5. Assessment by students, peers, self-

6. Teachers should be selected purely on the basis of merit.

7. Establishment of Open University.

8. De-linking of degree- student does not join the University to gain knowledge., but to get a degree which will help him in getting Job. In specific fields degrees are necessary, but in other jobs, it may be based on competitive exam.

9. Increasing working days in schools and colleges.

10. Setting up of a Higher Education Commission in each state. The guide lines suggested for the Teachers are:

1. U.G.C.norms- 180 teaching days. Therefore teachers must do actual teaching for 180 days.

2. They must Prepare their annual teaching plan.

3. Preparation of lecture matter and practice of diagrams and spellings before going to class.

4. Punctuality.

(3)

5. The time schedule should be attendance minute revision of last lectures 3 minutes; Lecture- 35 minutes; Summary of the days lecture and questions.

6. Discussions of current topics and examination questions. Tutorials, assignments, data collection, group discussions etc.

Inter classes were associated with degree/P.G. Colleges in 1948.

U.G.C.Norms- 40 hours work for every teachers out of which 18 hours work in the class room. A man in the office is normally expected to work for 6½ hours a day—why should we expect the teacher to work only for 1: hours.

2. Notes prepared this year will not be valid for next year, they have to be renewed every year.

Groups discussions help students in interviews. Three or four times a year will help Tutorials and Seminars also help. Students should be given the topic will in advance and later on should discuss. All these help verbal presculation Written work- followed by discussions students have knowledge, but they task the technique of presentation. Assignment should form a part of the teacher programme. Teaching in higher education should be co-related with research. This should be a continuous process.

Thursday Oct 16, 1986: Afternoon Session

'UTILIZING THE AVAILABLE INFRA STRUCTURE'

Dr. Y.B.Singh,
Director,
Allahabad Agricultural
Institute,Naini,
Allahabad.

1. It is for a long time that the need for some sort of training or orientation course for newly appointed teachers has been felt. I wish to congratulate Dr. S.C.Gupta, the Director of Higher Education, U.P. and his colleagues for organising the Ist Orientation Workshop of Teachers at the State Level and I wish to express my thanks for inviting me to give a talk on'UTILISING THE AVAILABLE INFRA-STRUCTURE'. The participants have already been told about(1) National Policy on Education(1986) Policy Thrusts in Higher Education (2) Role and Responsibility of Teachers in the light of New Challenges in Education and (3) Preparing for Class-Lectures: Teacher's role in organising tutorials, Seminars, group discussions etc.

II. The phase 'Infra-structure' may be defined as the basic underlying frame work of a system. In the context of this workshop we are dealing with the System of Higher Education. If Education leads us from Darkness to Light; the Higher Education is expected to lead us from Light to More Light.

Some Section from the document on 'National Policy on Education', relevant to my talk are given below:

-----2

HIGHER EDUCATION

5.32 Higher education opens us the world of knowledge and provides an opportunity to reflect on the critical social, economic, cultural, moral and spiritual issues facing humanity. By promoting the search for truth and the adventure of ideas it contributes to intellectual growth as much as to national development through dissemination of specialized knowledge and skills. It is therefore a crucial factor for survival in a competitive world where matching technologies are essential for economic growth, national security and defence. Higher education, being at the apex of the educational pyramid, has also a key role in producing teachers for the education system.

5.33 From another viewpoint, intensive cultivation of reflective, critical and creative intelligence as also pursuit of professional expertise, scholarship and excellence are the distinct objectives of higher education. Promotion of the study of Man and his relationship with the universe should be the area of special emphasis at this stage for which sciences, arts, crafts and technologies are utilised as essential means and instruments.

5.34 In the context of the unprecedented explosion of knowledge, youths will be required to adopt an array of methodologies to perfect the art of learning to learn. Higher education has therefore to become dynamic as never

before, constantly entering uncharted areas.

5.35 We have today around 150 universities and about 5,000 colleges. Still there is bound to be increasing pressure for opening new universities and colleges to provide higher enrolment. However, in the near future, the main emphasis would be on consolidation of, and expansion of facilities oin, the existing institutions.

5.36 The first and foremost task here is protecting the system from degradation. This brooks no delay for complacency.

VALUE EDUCATION

5.65 The growing concern over the erosion of values and increasing cynicism in society has brought to focus the need for read justments in the curriculum in order to make education a forceful tool for cultivation of social, ethical and moral values.

5.66 In our culturally pluralistic society, the values that are to be fostered through education should have a universal appeal, and should be oriented towards unity and integration of our people. Such value education should help eliminate obscurantism, religious fantasticism violence, superstition and fatalism,

5.67 Apart from this combative role, value education has a profound positive content, based on our heritage,

national and universal goals and perceptions. It should lay primary emphasis on this aspect.

MAKING THE SYSTEM WORK

7.1 The first thing to be done is to insist that all teachers teach and all students study. The country has placed a boundless trust in the educational system. Parents, as well as other citizens, have a right to know if this, at least, will be done. They would enquire if, in the wake of the New Policy, the prescribed courses will be covered, examinations conducted and results declared in accordance with predetermined norms and schedules.

7.2 The strategy in this behalf will consist of--

(a) a better deal to, and greater accountability on the part of teachers;

(b) provision of improved students services and insistence on observance of acceptable norms of behaviour;

(c) provision of a threshold of facilities to institutions; and

(d) creation of a system of performance appraisal of institutions as per standards and norms set at the national or state level.

Education is essentially a State subject, but it is heartening that the Central Govt. is taking keen interest in this subject and has established a full fledged ministry known as the Ministry of Development of Human Resources for

all round growth and development of our people.

National Level - Ministry of Education

and

University Grants Commission, CSIR and ICAR etc. etc.

State Level - Ministry of Education
Directorate of Higher Education
University to which the College is affiliated.

College Level - Management
Principal
Head/Incharge of Departments

Man - Students, staff (Teaching/Non-teaching)

Money- Grants and TIME

Material- Buildings, Books & Journals, Land (Play fields, open space, garden, lawns)
Machines- Equipment (Research/Teaching Aids)

Motivation- for putting the available Infra-structure to its maximum utility.

TEACHER has to play the pivotal role to keep the torch of Education burning and in achieving our national goals. This he should do by utilising the available infra-structure as fully as he can. Appropriate steps should be taken for meeting the objectives of National Integration, Spread of Literacy, Adult & Continuing Education, Value Education and Social Justice, making use of the infra-structure available at all levels. Teachers should have

esteem for one another and also esteem for themselves. One should remain in teaching profession only as long as he/she considers it as the best vocation.

I wish all the participants in this Workshop real job satisfaction in teaching profession and motivation for utilising fully the infra structure of Education at all levels.

Friday Oct. 17.1986: Forenoon Session

'Co-Curricular Activities: the role of the Teacher'

by Dr.(Smt.)Hem Lata Swarup,
Principal,Acharya Narendra
Deo Nagar Mahapalika
College, Kanpur.

We are all the teachers; when I came from Delhi University to Kanpur as Principal, I asked the then Principal Prof. Swarup Singh what would you advise me to do 'Remember that you are a teacher; he said. I have always felt that first and foremost I am a teacher. A teacher is one who is engaged in the pursuit of knowledge creating it, corelating knowledge with various aspects of life,and communicating it. The lead-sector of Education is higher education. It is in this sector that leaders for all walks of life are moulded; it is here that young men and women of potentials are trained and prepared for life. It is our task to develop all-round personality of our student.

I have been an ardent believer that our task is to develop all round personalities of our students, those whose responsibility has been placed on us. Our formal system is bound within the walls of 3 or 4 subjects. In humanities and Commerce, students remain in the college only for a few hours. Thus the time at our disposal is limited. The space at the disposal of college is limited. Constraints of time and space are there.

The role of teacher is that of expanding,supplementing the Class room and bringing it nearer to concerns having important bearings on emotional,physical and national aspects. One learns more in the lobbies of the University than in the Class-room. There are educators like Evan Ilyitch who want to do away will all formal teaching. It may be far-fetched. We must try to do our best within the

----2

limits that we are working in. Inspite of the constraints, if we have will, we will find the way.

Some of the major concerns to be tackled through co-curricular activities are:-

Inadequacies

(a) To rectify the mistakes of the formal education.

(b) Too much of specilization of micro-studies has done away with the Da'Vincian ideal of knowing something about every thing. In real life we do not always talk of specializations- One should have the capacities to appreciate things in life.

In society, one's whole concern is not his specialization. A well-educated person is one who is well-versed in aesthetics,literature,fine arts: he is not a more specialist. It is through curricular activities that one gradually acquires this all-round personality. In playing the role of Hamlet, or of Dhaniya' in the stage rendering of Prem Chand's 'Godan' the student-actor gradually unfolds his personality, he acquires versatility.

Through aesthetics,the co-curricular activities also develop humanism. Co-curricular activities like N.C.C, N.S.S. Population education etc. have another significant role of corelating education with life. The educated youth, boys and girls of today - own a responsibility to the society- to develop concern for the lot of the Common-man. Education must teach us to come out of the shell of puny-self. Through this comes compassion The Buddhist 'KARUNA'

Karl Marx said'The Philosopher has yet only interpreted the society. The task is to transform it. In the task of transforming an agricultural society into industrical society, values of Equality,Secularism,

----3

(3)

socialism, democracy, are to be upheld.

We teach our students various subjects. But knowing alone is not enough. Knowledge & emotion must lead to the right action. Through co-curricular activities, the teacher develops in the students a concern for the society, for the downtrodden. The teacher has to channelize the students energy through curricular activities, in the direction of social reconstruction.

The teacher must have a sense of commitment, sensibility to guide the students on proper lines. He has to arouse students' interest in things concerning the destinty of the mankind. The concern about earth, about world-peace, about environmental pollution should be aroused. The teacher has to co-ordinate his knowledge, to intigrate it. It is through corricular activities that integrated human personality can be developed.

Sports & physical education strengthen the body; fine arts stimulate the mind and heart. The teacher's role is pivotal in this. The co-curricular activities are most important for better discipline, for acquiring personal contact.

Friday Oct. 17, 1986: Forenoon Session

Hiatus between Teaching and Research in Higher Education

Dr. T.S.Papola
Director,
Giri Institute of
Development Studies,
Lucknow.

1. Higher education has always and everywhere been expected to perform the twin tasks of creation and dissemination of knowledge. Teaching without research could be a highly uninteresting, routine and even unproductive exercise. The importance of the relationship between teaching and research has particularly increased during the last few decades due to the very rapid advancement in scientific and technological field, most of which do not yet find place in the texts used for teaching. Research does not necessarily always mean creation of new theories and material, but also assimilation and presentation of the theories and observations in a systematically arranged manner. And the latter type of research work is essential as input in teaching. In most disciplines the new ideas and theories are also generated most of the time on the basis of assimilation and critical examination of the existing theories, either for their logical consistency or empirical validity. In this sense, teaching provides a stimulus to research.

2. Unfortunately, there has developed a somewhat unhealthy hiatus between teaching and research in the

——2

recent decades in India. Earlier most research was undertaken in the universities. Even now a substantial amount of research, particularly doctoral research, goes on in the colleges and universities. But overcrowding of campuses, competition economism due to job scarcities, decline in the status of teaching as a profession, crisis in campus leading to emphasis on admissions and examinations, resource constraints and several other factors have resulted in severe stresses and strains in the university system, relegating research to the non-essential and peripherial category of activities. On the other hand, a large number of research institutions have emerged with research as more or less exclusive activity. While these institutions have produced a large volume of research in various fields, both of the academic and practical relevance, dissemination of their output among the teachers and students in the universities and colleges has been rather limited. On the other hand, with the instutional division of labour of teaching and research tended to isolate the teachers in large part of the higher education system in the country from research. Paucity of resources, particularly with the colleges and regional universities have further made it difficult for those interested in these institutions to undertake research. The total resources available either in terms of man-power or funds are limited, but their allocation also tends to get mostly

in favour of teaching and administration and very little gets left for research. For example, the limited library funds available with a college or even with most universities had to be spent on text books for the use of students, and as a result, very few reference materials or journals get procured, for the use of teachers for research or even for the students pursuing doctoral research.

3. Funds are, however, not the only constraint. A major problem observed, particularly in colleges, is the paucity of academic resources in terms of consultation and guidance in respect with the various aspects of research. A large number of Ph.Ds are, no doubt, produced by these institutions even without adequate library and other resources. But it is commonly observed that a wider consultation and help from outside college would have vastly improved the quality of the thesis. For non-Ph.D. research, the problems are more acute. Identification of the problem itself becomes difficult in the absence of opportunity to interact and consult with experts in the field. Similar consultations may also be required for initial testing of tentative hypotheses and deciding upon the methodology. Further if funds are required to carry out the research information and access to the funding agencies is also not easily available. Many a time, fulfillment of initial formalities required by the funding agency, such as

submission of a well-formulated research proposal,is found difficult by the researchers from areas and institutions with very limited facilities and expertise.

4. It is observed that research supported by most funding agencies tends to be of problem solving and applied nature, and require skills and expertise of various levels and kind. The research, therefore, requires team work and an inter-disciplinary approach and methodology. It is a healthy and desirable trend in so far as most problems are multi-dimensional. A tradition of inter-disciplinary approach to social science research in order to arrive at realistic conclusions as aid for better understanding and social reconstruction has long been recognised. In natural sciences too the applied research requires to be inter-disciplinary. But now there seems to be a greater need of interdisciplinary work between involving both branches of knowledge if the results of scientific research are to be used for the use and benefit of society. Application of results of scientific research in the development of technology in various fields, such as agriculture, energy, population planning, health services etc., becomes difficult if the socio-economic framework in which they are to be applied are not adequately studied and conclusions reached in social science research may not be found useful in the

absence of the scientifically developed technology of the kind implied in these conclusions. This, however, does not mean that discipline-based research has any less importance. Research allied to teaching would best be pursued in a unidisciplinary framework, and, in any case, no good inter-disciplinary research could be pursued without adequate grounding in each of the disciplines involved. A reseacher does not have to be multi-disciplinary,but aware and appreciative of dimensions other than those of his own subject involved in the research problem so as to be a member of the research team. In fact, interdisciplinary research requires combining specialisation with wider framework.

5. The constraints of undertaking research in colleges and regional universities describe earlier combined with the need for organising research on an interdisciplinary basis may seem to suggest that undertaking research on any substantial scale is rather impossible in these institutions. But at the same time, it is important and necessary that these institutions participate in research activity both as essential input to teaching and also for professional advancement and fulfillment. While it may not be possible to fill in the resource gap for research at each of the institutions, it is necessary that adequate facilities are created at least at the regional level, in terms of well equipped libraries, laboratories and pool of expertise in various fields. In this respect, efforts also need to be made to utilise the

resources already created in research institutions on the basis of an institutionalised interaction between them and the colleges and universities.

Friday Oct. 17,1986: Forenoon Session

Problems of Combining Teaching with Research

B.K.Joshi

Giri Institute of Development Studies,Lucknow

1. Higher education has two major aims:(i) to foster s spirit and habit of inquiry and openness to new ideas, concepts and approaches; and (ii) to train people at a certain level of competence so that they may shoulder various responsibilities in the society and contribute to its betterment. The system of education in any society seeks to attain these objectives by establishing various institutions - universities, colleges, technical and professional institutions etc- which provide instruction and training through the medium of well established disciplinary traditions.

2. In India, the system and pattern of higher education as it has evolved in the post-independence period seems to have lost sight of the first objective and appears to be geared primarily towards the second. Even the second objective has not been performed very effectively. There are a number of valid reasons for this state of affairs. The foremost perhaps is the fact that there has been a phenomenal growth in the field of higher education in India - in terms of both number of institutions and enrolment of students - during the past three decades. Inevitably the system has been swamped by the pace of advance and rise in numbers. The major impact has been felt by the universities

----2

and colleges as a result of which they have been finding it difficult to fulfit either of the objectives. The task of providing trained man-power has increasingly been transferred to newly established technical and professional institutions, which have been deliberately insulated from the pressures and problems faced by universities and colleges. Consequently the universities and colleges have begun to play a secondary role in this regard.

3. Our institutions of higher education must now take a hard look at their functioning in terms of both these objectives. Probably the time has come to underline the importance of the first objective in order to have vigorous self-sustaining higher educational system in the country which can play its rightful role as a generator of new ideas and concepts for the analysis and understanding of the Indian situation. The teachers, obvisously, have to play a crucial role in this process.

4. Apart from other things, and there are many of them e.g. reduction of numbers, emphasis on quality, more resources for libraries, laboratories, staff,buildings etc, updating of courses of study at the under-graduate and post-graduate levels etc., one of the important ways in which the task of generating a spirit of inquiry is by changing the whole approach to teaching in the universities and colleges. The shift needed is from the "banking"

concept of education to a "problem-posing" concept of education to use a phrase from Friere.

5. In order for this to happen there should be a greater integration of teaching and research as a two-way process. Research must inform teaching, while teaching must pose problems for research. Once this happens, then teaching will cease to be a routine mechanical activity as at present. It will instead become a creative enterprise in which both the students and the teachers become participants.

6. All this is, however, easier said than done. There are a number of problems which will have to be faced if a serious attempt is to be made in this direction. Some of the problems can be listed as follows: rigid syllabii and systems of examination and evaluation, irregularity of academic sessions, and general apathy towards any kind of innovation. It is also generally said that our universities and colleges lack resources to promote research. This may be true to a large extent but there are areas of research which do not demand too many resources. Even with existing resources much relevant and worth-while research can be undertaken. What perhaps our higher educational institutions are short of is a culture of research. We have been so preoccupied with teaching, finishing courses and holding

Sub. National Systems Unit,
National Institute of Educational
Planning and Administration
17-B Sri Aurobindo Marg, New Delhi-110016
DOC. No.....................
Date.........................

examinations that no one seems to have either the time or the inclination to think of research. Instead of looking upon the two activities as separate and distinct we should in fact consider them as part of the same process - the discovery and dissemination of knowledge.

7. As regards the availability of funds and resources for research, we find the situation today is not all that bad. Happily, there are many sources of funding available in all branches of knowledge than there were in the past. The quantum of resources being spent by government/semi-government and private agencies within the country and international agencies and organisations is also fairly large. The need is to tap these resources and use them for enriching the teaching programmes in the universities and colleges. Considerable savings in resources can be achieved if the advanced students - at the post-graduate and doctoral levels - are hired as research investigators for collection and compilation of data. In this way they can be helped financially and also given "on the job" research experience and training. The psychological impact of such an experiment in creating a "culture of research" would be in measurably greater than any inflow of resources.

8. For the conduct of research of this kind, especially in the social sciences(and I would suspect even in the

natural and life sciences) one does not have to look far and wide for relevant problems and issues. They are part of our environment. This is particularly true of institutions located in rural and mofussil areas. In fact a non-urban location may even be and advantage in certain respects, especially if one is trying to look at problems of the rural areas.

9. Research activity of the sort outlined above can have a number of beneficial fall-outs for the institutions and teachers engaged in them. In a purely material sense, and by all means a very important sense, it can help the institutions to help build and strengthen some crucial infrastructure facilities like libraries, laboratories etc. Academically it can help build contacts and relations with other institutions and academics interested in similar problems and questions. The "multiplier" effects can be very great indeed.

Friday Oct.17,1986: Afternoon Session

MODEL LECTURE: ENGLISH-LITERATURE

Prof.A.K.Srivastava,
Prof.of English,
Lucknow University.

Presenting a model lecture on Literature--analysis of a poem--Dr. A.K.Srivastava enumerated that the seven basic essentials of a good lecture have been derived by him from Louis Untermeyer's interview with Capot about the art of lecture, Lord David Cecil's 'conversation' and Tagore's 'Essay on Education'. The seven ingredients of a good lecture are

(1) A model lecture contributes to the target thrust of the course that is taught

(2) It combines scholastic resources with such improvisations as may be required.

(3) It helps the learner to acquire a taste for the subject and motivates him. Taste comes from that sensibility, which is the hallmark of a gentleman.

(4) It seeks to combine the demand of comptent critical theory with pedagogical imperatives.

(5) It aims, not merely at communicating, but motivating the audience to imbibe.

(6) It adds to the taste of the learner and makes him share the enjoyment.

(7) It is also related to the testing procedures set to the course.

What effect a good lecture has on the audience was elaborated by Dr. Srivastava by quoting from three different sources:

1. Tagore's Commentary of BHIKHU PADMAPRIYA ON 'ANGARIKA:'

'Words sing their way into the vast spaces of my mind, and I know the source of light, and whence it came'

---2

2. JOHN BUTT'S remark on DOVER WILSON

'He never taught. That indeed was his success as a Teacher'

3. KENNETH BORKE

'He gave me much by insisting upon little'

Dr. Srivastava lectured on the poem entitled 'CONDOLENCE'

'It rained without clouds,
Without warning,
The golden sun dripped behind the low-hills
Shamefaced,
And then without warning it started snowing. .

I put your letter down and lowered the shutters"

He enumerated on the use of suggestive metaphors, use of archetypal imagery and private symbotism in the poem. He showed how the use of simple iambic tetrametre enchances the effect of a sudden, unprovoked loss, and how the aggravation of unstressed syllables suggests the mood of the poem.

Friday Oct. 17, 1986: Afternoon Session

Hormonal Control of Plant Growth

The Story of Plant Hormones.

by N.S.Parihar,
Dean College Development
Council University of
Allahabad,Allahabad.

What are Hormones?

Hormone - derived from the Greek word "Hormon " meaning "I arouse to activity". Applied in Animal physiology by Bayliss & Starling(1904).

Defined by starling(1914)- " Any substance normally produced in the cells of some part of the body and carried by blood stream to distant parts which it affects for the good of the body as a whole."

In higher animals - Hormones and nervous system control and coordinate the activities of different organs and tissues.

The body of a plant is also an association of organs and tissues and the coordination is achieved by hormones only (No nervous system). Hormones play a dominating and controlling role at every stage in the life of the higher plants.

Known plant hormones are - auxins, gibberellins any cytokinins.

What is Growth?

Growth is an irreversible increase in size. It is mainly due to two phenomena.

——2

(a) Cell division - controlled mainly by two groups of hormones, i.e., auxins and cytokinins.

(b) Cell elongation - controlled mainly by auxins and gibberellins.

Development of the Hormone Concept

(A) Auxins

Charles Darwin's (1880-81) early experiments on phototropic curvature of coleoptile of canary grass.

Boysen-Jensen(1910-11)- Stimulus of a chemical nature

Pall(1918)curvature without light.

Stark(1917-21)-Technique for expressing sap from coleoptile. Seubert(1925) - further work with extracts.

Went(1926-1928)- extracted the hormone and measured its effect on growth.

Avena - curvature bioassay test.

Isolation and chemical identification of 3- indole acetic acid IAA(a native plant hormone); search for compounds chemically similar to IAA and with similar activity. 4 groups of compounds.

(B) Gibberellins

'Bakane' disease of rice caused by Gibberella fujikuroi (Fusarium moniliforme) Kurosawa's(1926) experimental proof - sterile filtrates of fungus can cause bakane disease in healthy plants.

Yabuta(1938) isolated a substance from the extract of fungus and named it gibberellin.

---3

Yabuta and Sumiki(1938)isolated - crystalline gibberellin A and B Stodola *et al*(1955) isolated gibberellin A and X

Curtis and Cross(1954)isolated gibberellic acid(= gibberellin A_3= Stodolas gibberellin X). Many gibberellins have been isolated from higher plants as well as lower plants.

Bioassay for gibberellins

(a) dwarf *Zea mays* test (b) dwarf *Pisum sativum* test.

(C) **Cytokinins**

Wiesner(1892)concept of wound substance, Haberlandt (1913, 1921)- wound hormones. Bonner and English(1938) isolated traumatic acid from bean fruits.

Miller *et al*(1955) separated from aging yeast DNA - a stimilant of cell division-Kinetin - identified as 6 furfuryl amino purine.

Cytokinins(from cytokinesis)- a generic name given to all substances which resemble)kinetin in inducing cell division - found in many groups of Plant Kingdom.

Bioassay for Cytokinins

(a) cell division test (B) Retardation of barley leaf senescence test.

Domain of three naturally occurring groups of Hormones

Plant hormones have no target organs (Cf. animal hormones)

Functions not only multiple but also overlap. For any given process their action may be (a) Similar, or (b) opposed for (c) synergistic, or (d) entirely different

——4

Therefore, growth and differentiation in plants depends on balance between auxins, gibberellins and cytokinins rather. than on the presence or absence of specific hormones.

TABLE I

Summary of some of the characteristic effects of auxins, gibberellins and cytokinins.

Activity	Auxins	Gibberellins	Cytokinins
1. Cell division	Stimulate	Stimulate(less common)	Stimulate
2. Cell elongation	Stimulate	Stimulate	Stimulate (less common)
3. Growth of intact plants of dwarf type	No effect	Stimulate	No effect
4. Root initiation	Stimulate	Inhibit	Stimulate or inhibit
5. Growth of lateral buds	Inhibit	Stimulate	Stimulate
6. Leaf and fruit abscission	Inhibit or Stimulate	Inhibit or Stimulate	No effect
7. Flowering of rosetted biennials(non-vernalized)and roselted long-day plants	No effect	Stimulate	Stimulate
8. Parthenocarpic fruit development	Stimulate	Stimulate	Stimulate (less common)
9. Breaking of dormancy of underground organs	Inhibit	Stimulate	Stimulate
10. Avena Curvature Test	Yes	No	No
11. Dwarf maize test	No	Yes	No
12. Barley leaf senescence test	No	No	Yes

Interaction of I/A and Cytokinins in different concentrations for the formation of Roots and buds.

Some of the things which plant hormones can do and for which they are used in horticulture and agriculture.

(i) induce root formation on cuttings
(ii) prolonging or breaking dormancy of potatoes and other underground organs.
(iii) prevention of preharvest fruit drop
(iv) cause total or partial elimination of fruits.
(v) produce fruits(seedless)without pollination and fertilization.
(vi) early flowering and fruiting of pine apple and litchi.
(vii) weed control.

LITERATURE

Audus, L.J.: Plant Growth substances,New York,1959.

Avery,G.S.et al. Hormones and Horticulture,New York, 1957.

Klein,R.M.(Ed.)Plant Growth regulation,Iowa,1961.

Leopold,A.C.Auxins and Plant Growth,Los Angeles,1955.

Parihar, N.S.Hormonal control of plant Growth 2nd Ed. U.P. Scientific Research Committee Monograph, 1964.

Ruhland, C.J.(Ed.) Encyclopaedia of Plan Physiology Vol. 14, Berlin, 1961.

Skoog,F(Ed.)Plant Growth substances, Madison,1961

Went, F.W. and Thimann, K.V.: Phytohormones,New York, 1937.

Saturday, Oct. 18,1986:Forenoon Session

Academic and Social relevance of Education

Prof.A.D.Pant,
Director,G.B.Pant
Institute of Social
Sciences Allahabad.

My ideas of Education,its content and its social relevance are slightly different from those current. To me there are three fundamental principles:-

(1) The content of education of a particular period is always relevant to the society. Education is primarily a function of the society.(2) What is relevant to the society is determined by a part of the society--The ruling class. The dominant Political force of an age is also the dominant intellectual force. (3) As the society changes on account of material factors, education also changes.

The term'Education'is used both in a broad and narrower sense. In the broadest sense of the term'Education' is the learning process itself. Education is not only a function of human being but even in pre-human society we find it. Curiosity is not the monopoly of homo-sapiens. All knowledge begins in curiosity.

In somewhat more specific sense, Education consists in the induction of the maturing individual in the cultured society. Mead shows how among Manus, Samoans, Kafir Tribes, the induction of the maturing youth in society was celebrated with elaborate rituals.

In a more technical sense Education consists in the control of the learning process by some conscious individuals-- In this sense, education becomes more specific. Whatever the impact of forces of modernisation, education always remains the induction of individual in the cultural mores of the society. According to Plato--

-----2

(2)

'Education must create harmony between the individual and society'-- Making the individual assimilate the dominant values of the society. The Values prevailing in the society at different periods of time also determine the nature of education.

In Egyptian Society the first school for Royal children and Nobles were started, where the students were taught. Writing, ethical concepts and good manners. In China, in about 2500 B.C. after the death of Confucius, Education, in formal way, began. It was confined to the study of 'Four Books' and five Classics' and its aim was to prepare offices for the army. It was based on rigid confirmity, having no scope for deviation from the prescribed pattern either in style or in content.

In the Education pattern in ancient Greece, the Spart an pattern differed from the Athenian method of education. In Sparta where landed aristocracy dominated, the prime aim was to provide military education; there was little scope for literary education, for the social values prevalent there did not need it. In Athens, which was a Commercial city, having contacts with the wider-world, philosophy flourished and reached astounding heights. Plato and Aristotle contributed most to Greek philosophy.

I Ancient India, Education acquired definite shape after the Vedic period. Gautam in his 'Dharma Shastra' enunciated that Dharma' is founded on the Vedas, Shruti, Smriti, and Sheela of those who know them. To Gautam 'Dharma' is 'Chatur-Varna Vyavastha'. Kautilya in his Arthashastra' says that a society is to be founded on 'Arya Maryadaa krit varna shram esthitia!

Thus what is good and what is bad for the people in a particular period, what is to be imparted to them in

education, is determined by the rulers of the society. The morality of a particular period is the morality of the ruling class. Though Education should be the function of the society, not of a group--The ruling group of society, but in actual workings it had always been so.

Before examining the contents of education in the present society, we have to see its background. It is, in a sense, a gift of the foreigners. Maculary, in his famous Minute on Education made it clear that the system of education introduced was trying to create a class of people dark in colour, but Western in their thoughts and manners. As the Britishes wanted to create a class of clerks, that system of education became relevant for that period. The British rule in India ushered in a radical change in Economic system-- The forces of capitalism gave full play to market economy, and the commercial bourgeoise wanted a system of education that would be suited to their requirements. Today, though forty years have passed since we attained independence, our education is still struggling to emerge out of the old pattern. In our society, there has emerged a class of industrial bourgeoise and there has also come up a class of Kulaks, the landed aristocracy. Both have common interest in preserving the existing social system, but in Economic field their antagonism is apparent.

We,in our eagerness to industrialise the country, are emphasising the training in Management and are Turning our economy into market-economy,little realising that one of the greatest needs of our country is to abolish the unjust social system, prevailing at present. The irony is that our system of education is producing men,--not capable of changing the society, but of ruling the society.

The academic contents of education always depend on the state of knowledge in a particular time. It has always been the tendency of the ruling classes to twist education of their own purposes we must remember that to attain the absolute truth is an impossibility: truth is relative, and unfolds itself eternally. Plato believed that the aim of dialectics was to bring man face to face with ultimate reality. That ultimate may be unattainable, but education can give us the impetus and the ability to mould the society into a saner, juster pattern.

Saturday Oct. 18, 1986: Forenoon Session

HIGHER EDUCATION - SUGGESTIONS FOR IMPLEMENTATION

Professor K.M.Bahauddin
Dean(R & T)NIEPA
New Delhi.

HIGHER EDUCATION

The Education Policy 1980 has emphasised that "higher education has to become dynamic as never before constantly entering unchartered areas." In order to achieve this "courses and programmes will be redesigned to meet the demands of specialisation better." The suggestions made below are based on the above Policy Statement, and are focussed on under-graduate education in colleges and universities. Post-graduate education can be considered as a specialisation and must take off from under-graduate programmes. Similarly under-graduate education should take off from school education.

The Policy Statement has two dimensions:(i) for the departments of the university for continued updating of the curriculum; and (ii) for the university to identify the unchartered areas and focus the developmental planning in that direction.

1. UPDATING CURRICULUM- In curriculum framing, the perception of the curriculum framing, the perception of the curriculum planner, the implementation officer (teacher) and the authority

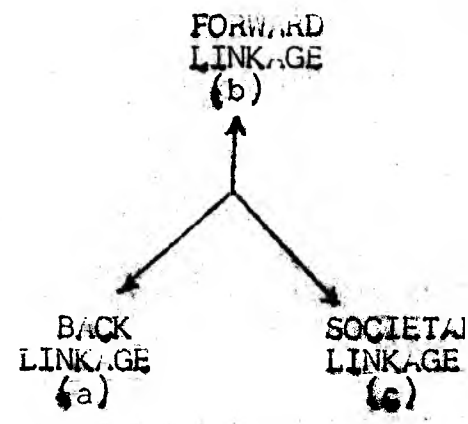

—2

monitoring the implementation should be more or less the same. To facilitate this a tripod concept is suggested. Any other concept can be adopted. But the main point is that the perception of the different groups should converge as far as possible to the same direction. The curriculum structure has a societal linkage, back linkage and forward linkage from where the post-graduate education takes off.

(a) Back Linkage:

In the University system, the curriculum, especially the Science curriculum, is historically structured and, more and more are added to the old, which makes the curriculum backward looking. A student is compelled to utilise most of his time to learn things which could be avoided and he has less time to understand the emerging Science and its application.

What is needed is a new base to start with eliminating what is unnecessary. For example, in Chemistry for more than a century reactions were explained by impirically derived valency concept. By the beginning of this century, the electron theory of valency emerged and later the quantum mechanics could explain most of the chemical reactions. Therefore, if the Chemistry curriculum is redesigned on the basis of electron concept of valency and quantum mechanics, much of time wasted on obsolete concepts can be avoided. A forward looking curriculum focussed on new development

in theories can emerge which can change the horizon of understanding of the student. The core of the Chemistry teaching can be:

1. Structure of atom and periodic classification.
2. Chemical bonding and molecular structure.
3. Bulk propertias of matter
4. Chemical energetics
5. Chemical Kinetics

Modules of Organic and Inorgance Chemistry, Industrial and Environmental Chemistry, Bio-Chemistry etc., can be added to common core. A similar approach can be considered for Physics and other subjects.

(b) Forward Linkage:

A Science graduate should be able to assimilate the latest knowledge in his field of study and should be able to apply the knowledge to local situation. Since the knowledge is increasing in a rapid pace, and proficiency level to be achieved is to be decided, and this level is a floating point. Since the duration of the course remains the same, when the level of proficiency goes up, it becomes necessary to delete whatever could be deleted or start from a new base.

(c) Societal Linkage:

Relevance of the curriculum to societal needs, development of values, social moornings etc. come under this head. A preliminary study of an under graduate curriculum of Science Stream shows that the time devoted to Social Studies

including languages is less than 10%. About 20% of the time of a 3 years degree pgramme may have to be earmarked for Social Sciences in a restructured Science curriculum.

In other wards when a curriculum is redesigned, the planner, the teacher, the academic bodies/Vice-Chancellor should be clear about the proficiency level to be achieved, the elimination of avoidable portions to reduce the burden of students and ensure sufficient time on social aspect of education. The committees, which meet occasionally for a short time, for curriculum change, may not deliver the goods. An expert body under the UGC or autonomous may be set up for continuous updating of the curriculum and for fixing the minimum proficiency level in each subject and for designing the structure of each curriculum.

2. Identifying unchartered areas and focussing development thrust on these areas:

The interface between Physical Sciences, Biological Sciences, Earth Sciences and Social Sciences are developing more rapidly today than individual sphere of Science. The Biological Sciences may contribute more to humanity during the next century than physical sciences. In the University system, there is no machinary to monitor such changes though individuals are alive to it. This also calls for an expert body/organisation to monitor possible changes and initiate action and guide the universities and colleges in these matters.

MONITORING IMPLEMENTATION

Implementation of the designed curriculum to achieve the minimum level of proficiency is most important. The University Grants Commission has already recommended to divide the whole curriculum into five or six units and questions to be set up from each unit to avoid selective study and teaching. This simple forward step can be the basis of monitoring the teaching learning process. The teaching scheduled for the whole year can be planned on the basis of units. The coverage in each quarter can be decided and the progress in each quarter can be marked in the appropriate rectangle shown. The performance of the students in each subject can be plotted as histogram and could also be correlated with the progress of teaching learning process during the course of the year. These two graphs may give a data base to understand the status of the teaching learning process and in a way an indirect measure of the performance of the teacher. The teacher evaluation may have to be open and data based and these graphs and charts may be useful from that point of view.

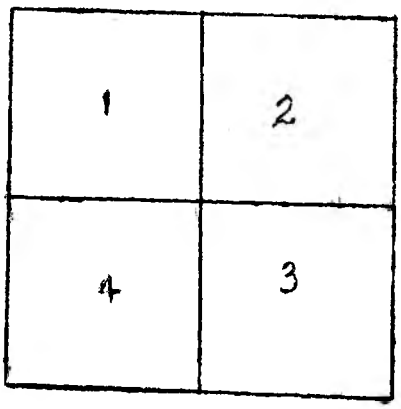

Computerised information flow will help the head of the Department to understand the progress of teaching-learning process in the Department. The Dean will be able to understand the progress of work in different Departments of the faculty and the Vice-Chancellor will be able to know the progress of work of each teacher in the University and correlate it with the performance in the examination. Information from the students and guardians can be of help in validating the information regarding the progress of teaching learning process.

Saturday Oct. 18,1986: Forenoon Session

SOME MONITORING AND CORRECTIVE TECHNIQUES IN EDUCATIONAL MANAGEMENT

K.M.Bahauddin
Professor,
Dean(R & T),National
Institute of Educational
Planning and administra-
tion, New Delhi.

The educational system today is not able to detect its own shortfalls and thereby not able to correct itself. There are suggestions from many quarters to replace it with something new. Though there are suggestions and innovations in educational process, no one has clearly defined the management system which can detect the health of the system. Even for implementing the innovation, a management system is necessary. Even the existing system can be improved by new techniques of management. For success the change should be integrated with the system. There should be a transitary phase when the existing system and the components of change may go together. During this phase, care should be taken to see that the components of change are not sabotaged. The first thing needed is to bring the existing system under control. The following paras are suggestions for controlling the existing system before the contemplated change.

An educational administrator should be able to know whether he is taking decisions on the basis of correct information rather than arranged information for taking decisions in a desired direction..He should also be able to know whether the decisions are being implemented in the way it should be.

-----2

He does not have the time to understand the research tools and apply it to the relevant situation. What is needed for an administrator is to understand the general health of the situation in the minimum possible time and to concentrate his attention on areas where his attention or intervention is essention. The following tools and indicators have been tried with reasonable success:

1. (a) Control Charts, (b) Bar Charts
2. Histograms
3. Flow Charts
4. Computer Matching

1. (a) The Control Chart can be used wherever regular repetitive or steady flow of information is involved like attendance, hostel payments or collection of college fees, etc.

Case Study in Hostel Management:- An analysis of the expenditure in a hostel mess has shown that 60% of the total expenditure was controlled by four items. It these four items can be controlled, the total expenditure could be regulated. In the National Defence Academy, the cadets require about 2400 calories per day. A student in a College require about 1800 calories a day. Therefore, the per head per day consumption of these four items in the hostel should not be more than that in the Army mess. The per head per day consumption in the Army mess was used as control to understand the expenditure of the four items in

-----3

the hostel mess. The per head per day consumption in different hostels were plotted to have a comparison between them and with the National Defence Academy. The consumption was regulated to within the consumption per head in National Defence Academy. The result was more than 30% reduction in the mess bill. The time required for exercising control on five hostels was less than half an hour in a month. The person who calculate the per day rate, plots the per head per day consumption in the graph.

(b) Bar Charts can be drawn for the percentage pass in a class in different subjects, in a school in different classes, in a district in different schools. This will indicate the relative position of the subjects taught in classes in the school, and the schools in the district. The task of the teacher should be not only teaching, but reducing the drop out and upgrading the lower 10% students and taking remedial measures for it. The task of the Headmaster should be not only managing the School but also understanding the reasons for the poor performance in the lower 10% of subjects taught and taking remedial measures to improve the situation. The task of the District Education Officer (DEO) may include remedial measures to improve the performance of lower 10% schools in a district. At State level to have a Technical

Cell at the State level to device methods for understanding regional differences and disparities and for modifying the system to suit the local conditions.

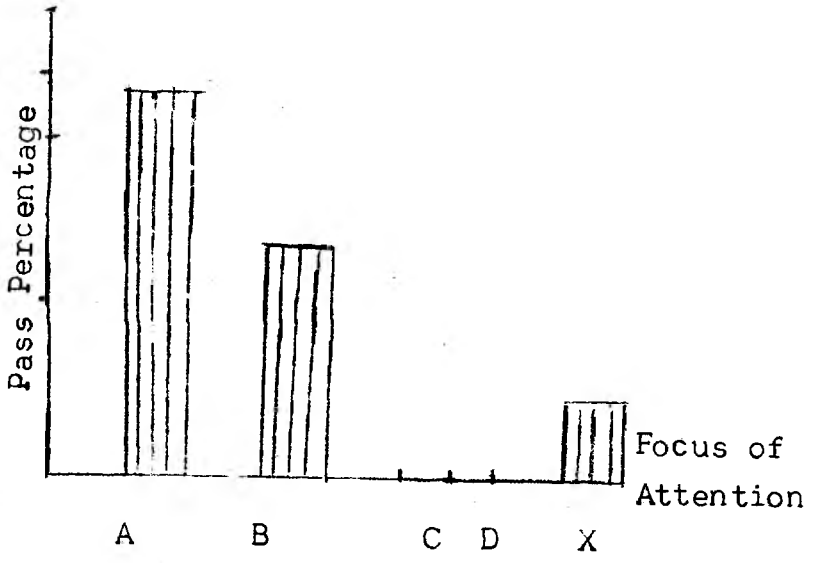

While planning is for excellence, the monitoring mechanism is for locating deficiency and correcting it. The performance of top ten percent can also be analysed for finding the reasons for their better performance. The conclusion can be used for improving the lower ten percent. By this method the average performance of a class, school or district can improve and the differential can decrease. The same method can be adopted in the University system with the Chairman, Dean and Vice-Chancellor/Pro-Vice-Chancellor replacing the functionaries in the school system.

This simple method can be adopted without much difficulty at all levels. Indirectly we are introducing a component of data based academic management, and evaluation. At present any attempt to monitor and measure the quantum of work is being resented by the teaching community. The Bar Chart is only an indicator and not a measurement of work. Further steps are to be taken to confirm the indication.

2. Histogram:- A better indicator is the histogram but the interpretation of the histogram requires some training and can be used by Vice-Chancellor/Pro-Vice-Chancellor, regional level and State level officers in the school system. The distortions can be visible and attention can be focussed on selective basis to improve the deficiencies. Sympathetic improvement may come in other areas.

The assumption in the histogram method is that the human performance, competence, intelligence, etc. follow the normal frequency curve. This has been tested by several experiments all over the world. In any case, we are using it only as an indicator and any decision making will be based on supporting data and corroboration.

Major distortions from the normal curve indicates a gross error and the reason for it can be analysed. Any distortion indicates human effort or a lack of it. Graph No. 1 may indicate poor evaluation while the Graph No. 2 may indicate poor teaching. By drawing histogram of

performance of students -- in a class, one above the other it is possible to understand whether the teacher has performed his duties, whether the question paper was tough, whether the evaluation was reasonable etc. Where the results are computerised, drawing the histogram is easy.

3. Flow Charts:- In any system, if the flow diagram is simple and streamlined it can be managed easily. A complicated multi-directional flow diagram indicates confusion in the system. Any effort to improve the performance within a complicated and distorted system may not succees. Therefore, the effort should be to see that the organisational structure is as simple and streamlined as possible.

Case Study:- In a particular University, the mark lists were not available to the students even after six months of announcement of results. A flow chart was drawn of the stages through which each operation is taking place before the results are announced. The flow diagram showed to and fro movements and complicated loops. A simplified uni-directional flow chart was drawn with necessary controls. The result was that the mark sheets could be issued to the students, along with the results. This was achieved without change in the structure of administration creating minimum strain in the organisation.

This method was utilised for reducing delay in office matters, in detecting the source of malpractices and

impersonation in admission etc.

4. Computer Matching:- The computer can be used as a management aid successfully in educational management. Structural changes can be brought about in the university management system by the induction of the computer. The transitional phase when the existing system is not replaced completely and the new system is not fully established, it is critical and should be planned carefully. Responsible people should be in charge of implementation especially at the transitional phase. Any deliberate effort to create confusion, so that the new system will not establish itself, is to be plugged in the beginning.

Today in the University system, the decision making has shifted very much down the hierarchy. Any Vice-Chancellor new to the situation may receive structured and arranged information for decision making. What is needed is correct and impersonal information so that decisions can be taken with objectivity. The computer may be able to store information on all major aspect of management and decision making based on rules and regulations. The decision making authority may be able to depend upon the stored information for counter checking the notings in file from below or for taking decision independently on the basis of the information stored. For monitoring implementation, graphs, charts and histograms can be drawn with the help of computer. Once

the computer based management is established, structural changes in the administrative procedure is easy. Some cases where computer matching has given results in difficult situations are discussed below:

In some Universities unauthorised persons occupy hostel rooms without permission and there is no method of identifying them. These persons may have linkage with the underworld. They often work in collaboration with the corrupt inside. The Provost and warden and other authorities may not be able to identify them. If at all identified. They may not be able to face the musclemen. For identifying the non students, the computerised student list in the University was matched with the hostel occupancy list. When the residents who were not students were identified, they were persuaded to leave the hostel. When the number decreased, the persons with criminal tendencies could be located and steps taken to prevent their entry into hostels.

The more effective use of the computer was for quantamising the work load of ledger keepers, who were not keeping the ledgers uptodate by pretending to have too much work. By computerising the receipts, it was observed that the ledger keepers had very little work to do and inspite of that the ledgers were not uptodate. The fact that the credits can be posted in individual accounts, without the help of the ledger keepers, had a salutory affect on discipline.

In other words, the computer has helped to quantamise the work load of ledger keepers bring a distorted system back into rails. The lists of students with arrears more than Rs. 2000/-, Rs. 1000/-, Rs. 500/- etc. were also available to the Provosts. This helped the Provosts and Wardens to identity the students and recover arrears. A judicious use of the computer can bring discipline all along the line.

The performance of a student in exams, extra-curricular activities, dues in the hostel and all other information can be fed into the computer for a data base. A computer terminal on Vice-Chacellor's table will help him get information about each student. When any student is discussing his problems with V-C or any other authority, complete information regarding the student can be available on the dial of the terminal by suitable recall mechanism. Correctness of the statement of students can be verified then and there and decision taken without waiting for information from below. The same methods can be adopted when dealing with staff. There can be all round improvement in discipline in the University system which is essential for any creative work. The computer can be used for many other administrative purposes also.

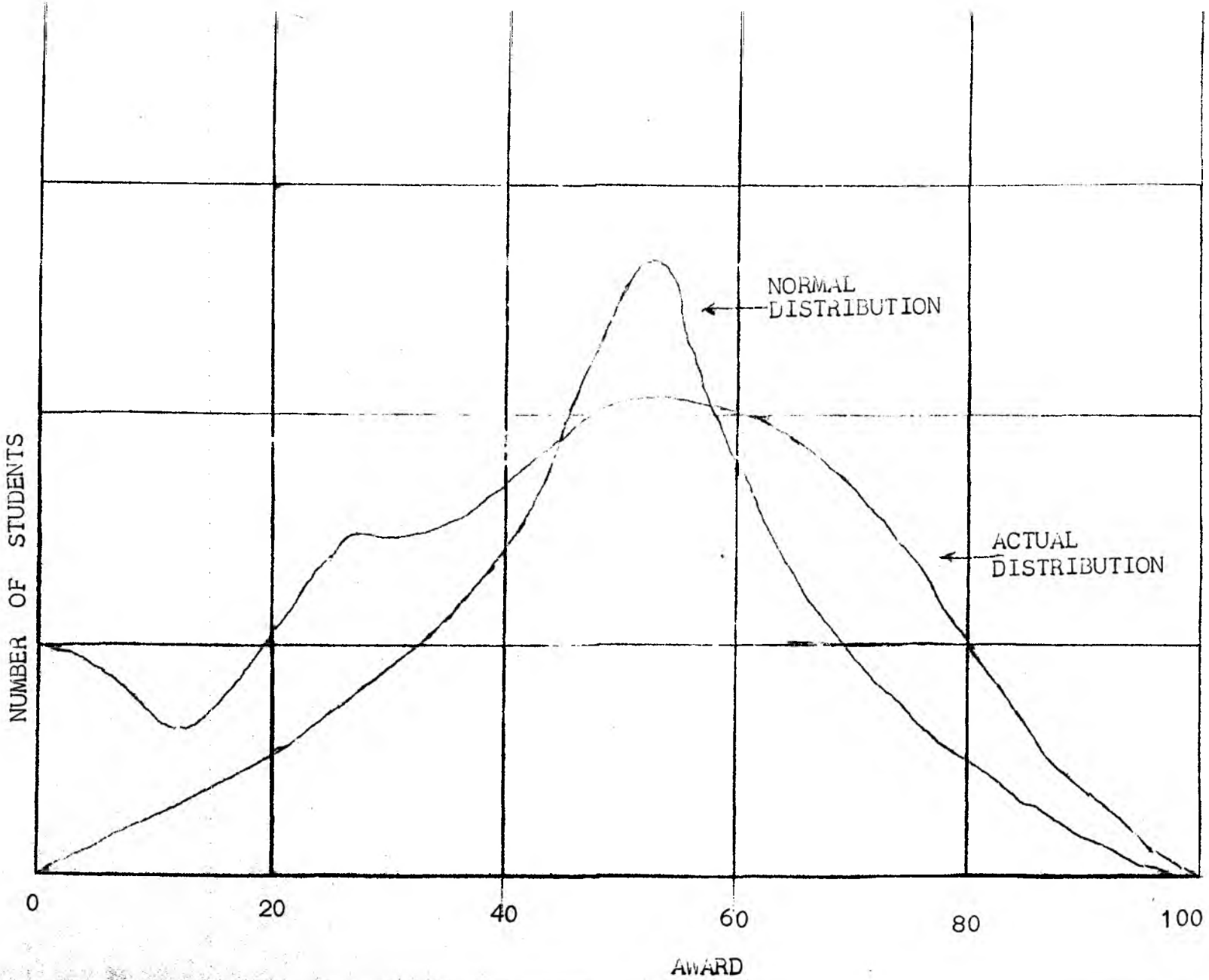
NORMAL
DISTRIBUTION
ACTUAL
DISTRIBUTION
NUMBER OF STUDENTS
0
20
40
60
80
100
AWARD

FIGURE 2

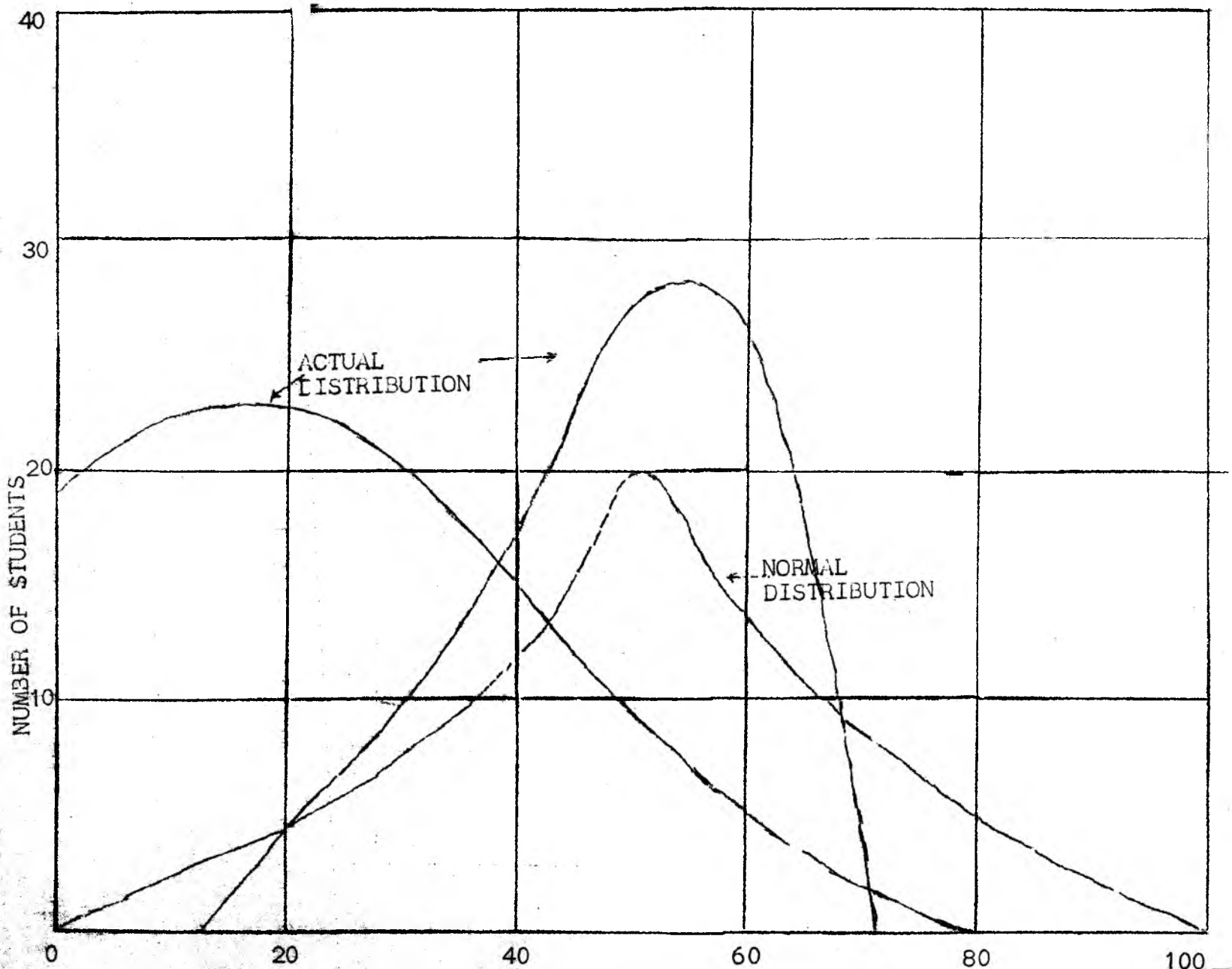
40
30
20
10
0
20
40
60
80
100
NUMBER OF STUDENTS
ACTUAL
DISTRIBUTION
NORMAL
DISTRIBUTION

दूर शिक्षा-पद्धति की सामाजिक विश्वसनीयता

योगेन्द्र प्रताप सिंह,
निदेशक,
पत्राचार पाठ्यक्रम एवं सह
शिक्षा संस्थान, इलाहाबाद
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद।

हजारों वर्षों से चली आती हुई पारम्परिक शिक्षा का संबंध अध्यापकीय समुदाय, पाठ्यक्रम सम्बद्ध पुस्तकों तथा परिसर से है। सामाजिक विश्वसनीयता का प्रश्न आज इस दूर शिक्षा प्रणाली से इसलिए जुड़ा है कि हजारों वर्षों से चली आती हुई पारम्परित शिक्षा ने हमारे मन पर अपना एक स्थायी शैक्षणिक संस्कार छोड़ रखा है।

यह शिक्षण पद्धति नया प्रयोग नहीं है। यह अब एक स्थापित शिक्षण पद्धति का रूप ले चुकी है। सम्पूर्ण विश्व में इसके 5000 प्रतिष्ठान है जिसमें सन् 1984 के आंकड़ों के अनुसार लगभग अस्सी लाख विद्यार्थी इससे कृषि, इंजीनियरिंग, मेडिसिन, व्यावसायिक, कला, वाणिज्य आदि की डिग्रियां ले चुके हैं। सन् 1986 तक यह संस्था एक करोड़ छात्रों के अध्ययन की व्यवस्था करेगी। भारत में इसके अब तक दूर संस्थान खुल चुके हैं और सातवीं पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत अनुमानत: 10 विश्वविद्यालयों को खुलने की सम्भावना प्रगट की जाती है। देश भर में लगभग 2 लाख स्नातक इस शिक्षण व्यवस्था से तैयार हो रहे हैं। इन छात्रों को वही पाठ्यक्रम, वही परीक्षा, वही अंकतालिका तथा वही प्रमाण पत्र दिया जाता है जो परिसरीय छात्रों को। दूर शिक्षा के छात्रों का उच्च स्तरीय प्रतिशत भी परिसरीय छात्रों से कम नहीं होता। ऐसी स्थिति में यह कहना कि पत्राचार पाठ्यक्रम प्रणाली अभी प्रयोग के स्तर पर है, बात स्पष्ट नहीं है।

यू०एन०ओ० दूर शिक्षा विश्वविद्यालय रिपोर्ट में इसके विषय में कहा गया है-- Teaching learning techniques which make use of communication technologies and which do not therefore depend upon traditional face to face encounters between pupil and

Teacher. Where any face to face element is encluded it is usally expected to be a remedial role rather than being part of the routine programme.

इसको इतनी स्पष्ट परिभाषा एवं स्वरूप विवेचन के पश्चात समाज में अब भ्रम नहीं होना चाहिए कि इस शिक्षण पद्धति का स्वरूप परिभाषित नहीं हो सका है। यह शिक्षा पद्धति सस्ते से सस्ते माध्यम से विकसित माध्यमों की ओर जन समुदाय को ले जाती है। भारत ही में नहीं, आज विश्व में डाक प्रसारण सबसे सस्ता माध्यम है। सम्पूर्ण विश्व इस डाक व्यवस्था का उपयोग छपे हुए पाठों को छात्र तक पहुंचाने में करता है। छात्र इसी डाक व्यवस्था से अपनी प्रतिक्रिया पुस्तकों को संस्थान तक भेजता है। अत: संस्थान और छात्र के बीच एकेडेमिक संबंध डाक व्यवस्था के माध्यम से निरन्तर बना रहता है। इसी व्यवस्था के लिए इसे पत्राचार पाठ्यक्रम प्रणाली" Correspondence Education System "कहा जाता है। सुदूरवर्ती छात्रों तथा सम्पर्क के समग्र माध्यम का प्रयोग होने के कारण हम इस दूर शिक्षा"Distance education" कहते हैं। और साक्षात्कारात्मक Face to Face प्रणाली से भिन्न होने के कारण इसे हम अनौपचारिक शिक्षा पद्धति करते हैं। पत्राचार पाठ्यक्रम को शिक्षण पद्धति का अभी देश में न तो इतना अधिक प्रचार-प्रसार हो सका है कि जन सामान्य को उसका सही स्वरूप समझाया जा सके और न पारम्परित शिक्षण से लाभ उठाने वाली एजेन्सियां समाज में इसके स्वरूप को विकसित होने में मदद पहुंचाती हैं। प्रशासन भी, इस शिक्षण पद्धति की वास्तविकता को समाज तक नहीं पहुंचा पा रहा है।

दूरस्था शिक्षण पद्धति के विषय में सबसे बड़ा आरोप यह लगाया जाता है कि इससे संबंद्ध छात्र में सामूहिक एवं सामाजिक भावना का विकास सही ढंग से नहीं होता। कारण कि वह कक्षा भवन के छात्रों के साथ सामूहिक भावना से वंचित रहता है। इस प्रकार के आरोप आंशिक ही सत्य हैं क्योंकि सम्पर्क शिक्षण, प्रतिक्रिया पुस्तकों, रविवासरीय कक्षाओं,

सेमिनार आदि के माध्यम से वह सामूहिक तथा सामाजिक दायित्व से अपने को बाँधता है और इस शिक्षण पद्धति से सम्बद्ध अनेक अध्ययन केन्द्र इसीलिए बनाये जाते हैं कि संस्थाओं के न केवल साक्षात्कारात्मक पद्धति से छात्र को जुड़ने का अवसर प्रदान किया जाता है अपितु शिक्षणोत्तर क्रियाकलापों का भी उसमें समायोजन होना चाहिए।

यह भ्रम मन से निकाल देना चाहिए कि पत्राचार पाठ्यक्रम प्रणाली कोई भिन्न प्रणाली है। यह दूर शिक्षा के क्रियान्वयन का सबसे सस्ता तथा सुलभ माध्यम है।

Saturday Oct. 18,1 86: Afternoon Session

Introduction to T.V.

Dr.M.S.Bist,
Head of the Department
Department of applied
Physics,University
of Allahabad.

So far as education a whole is concerned, T.V. is not a scientific tool just as computer is. There are certain basic requirements to make it a powerful medium in the class room. T.V. is ordinarily taken as a source of entertainment, but actually it is a distance means of communication. Tele means "distance" we learn through hearing and seeing, but when bothare combined we have class room teaching. T.V. is a media who can take up the good of both and eliminate the bad. When we take of television as a tool, we find that it is a three dimensional tool. In ordinary picture the third dimension is just an enterpretation of the mind. It makes global transmission of knowledge possible. Here is variety of transmission. first close circuit.. T.V.technology has more relevance to our day to day class room faculty. Each one can device him own methology of passing on information in the class room.

Satureday Oct. 18, 1986: Afternoon Session

The Art of Communication in Higher Education.

Mrs. L.S.S.Day,
Home Economics
Department,
Allahabad Agricultural
Insitute,Naini,
Allahabad.

Mrs. Day defined communication as a process by which two or more persons exchange views and ideas. It can also be defined as the movement of knowledge to achieve some meaningful end. Good communication is an ingredient of good teaching; the aim of class-room communication is - (1) To inform and create awareness of new ideas,(2) To modify existing beliefs and ideas, and(3) To facilitate decision making.

Mrs. Day further elaborated, with diagrammatic representation, how communication includes expression, interpretation and response. If the source does not have clear information, and/or if the message is not transferred adequately enough, if it is not deciphered properly, and if the receiver does not respond, the communication is lost.

COMMUNICATION IN CLASS ROOM

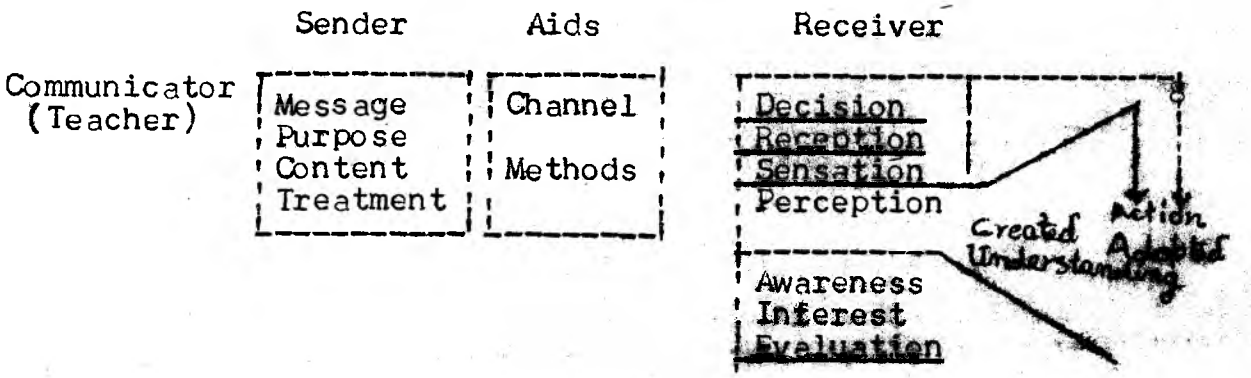

(2)

She further explained how the five elements of communication are to be balanced. Communicator, message, channel, treatment and response of audience should harmonize to produce really good communication. She presented the Leagan's method in the following diagramme:-

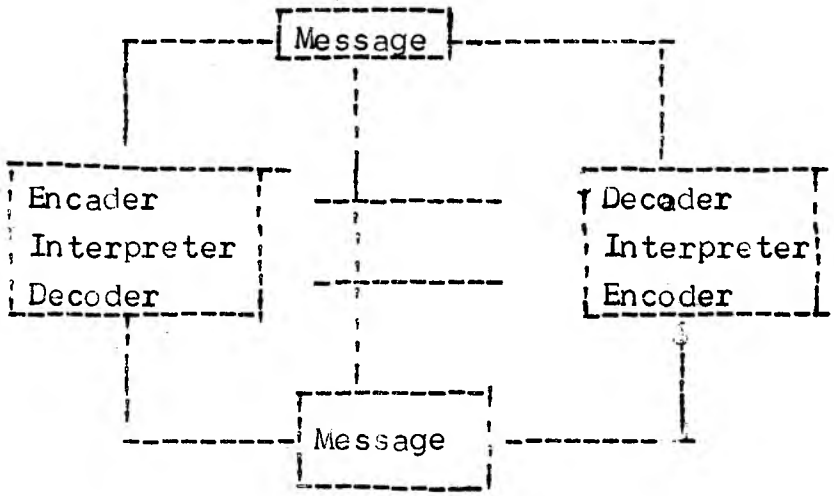

रविवार अक्टूबर 19, 1986 पूर्वाह्न सत्र

शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्ध: एक मनोवैज्ञानिक विचार धारा

डा0वीरेन्द्र सिन्हा,
सहायक निदेशक(उच्च शिक्षा)
उच्च शिक्षा निदेशालय, उ0प्र0,
इलाहाबाद ।

मानव विकास में शिक्षण का बहुत बड़ा योगदान है । यह निरन्तर प्रक्रिया है, जो जन्म से अन्त तक हर क्षण, हर स्तर पर चलती रहती है । इस हेतु किसी न किसी शिक्षक की आवश्यकता पड़ती रहती है । माँ सबसे पहली शिक्षक होती है, फिर बालक जब घर के वातावरण से बाहर स्कूल भेजा जाता है, वहाँ वह शिक्षक के सम्पर्क में आता है । यहीं से शिक्षक-शिक्षार्थी में एक आत्मीय एवं भावात्मक सम्बन्ध जुड़ने लगता है ।

शिक्षक चाहे प्राइमरी पाठशाला का हो , या विश्वविद्यालय स्तर का, शिक्षण प्रदान करना उसका कार्य है । इस हेतु उसे अपने विद्यार्थियों से मधुर सम्बन्ध बनाने होते है । विद्यार्थी के समक्ष शिक्षक एक"आदर्श" (Project Figure) के रूप में होता है, उसके गुणों का विद्यार्थी जाने अनजाने में अनुकरण करता है । इसीलिए शिक्षक को समाज तथा विद्यार्थियों की आकांक्षाओं तथा उम्मीदों के अनुरूप बनना पड़ता है । महाविद्यालयों के शिक्षकों के समक्ष यह दायित्व और अधिक बढ़ जाता है, क्योंकि वे किशोरों के सम्पर्क में आते है । किशोरावस्था एक झंझावत की आयु होती है, जिसमें किशोर अत्यन्त ही संवेदनशील, दिवास्वप्न तथा उच्च अभिलाषाओं/आकांक्षाओं के बीच विचरण करता रहता है । यहाँ सबसे अधिक प्रभावित उसे उसका शिक्षक ही करता है । इसीलिए शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्धों के बारे में सोच आवश्यक हो उठा है । यह एक विचार योग्य मुद्दा है ।

इस मुद्दे पर प्राचीन समय से विचार विमर्श होता रहा है । प्लेटो ने अपनी पुस्तक"रिपब्लिक" में कहा है कि किसी भी शिक्षक को विषय वस्तु के ज्ञान के साथ साथ अपने विद्यार्थी के स्वभाव की जानकारी भी होनी चाहिए । अरस्तु की विचारधारा जो शक्ति मनोविज्ञान(Faculty Psychology) के नाम से प्रसिद्ध हुई, इसी आधार शिला पर स्थिर थी । दो शताब्दी पहले इस पद्धति को

मनोवैज्ञानिक दृष्टि कोण प्रदान करने में रूसों ने शुरूआत की । रूसों ने अपने शिक्षा ग्रन्थ ऐमिली (Emily) में एक काल्पनिक बालक ऐमिली की शिक्षा अवस्था का वर्णन करते हुए लिखा है कि " बालक एक पुस्तक है, जिसे प्रत्येक शिक्षक को आद्योपान्त पढ़ना चाहिए । पैस्टालाजी ने स्वतन्त्र वातावरण की मांग की, जिससे विद्यार्थी स्वाभाविक ढंग से आत्म प्रकाशन (Self disclosure) करता हुआ आत्म अनुभव द्वारा सीखे सके (Forebell) ने इसी आधार पर किन्डर गार्टन प्रणाली की स्थापना की । और यही से गुण केन्द्रित या पुस्तक केन्द्रित शिक्षा बाल केन्द्रित हुई । हरबर्ट ने कक्षा शिक्षण के कार्य को मनोवैज्ञानिक आधार प्रदान किया । इस आन्दोलन को सफलता प्रदान कराने का श्रेय इटली की डा० मान्टेसरी (Montessori) को प्राप्त है । मान्टेसरी ने लिखा है कि शिक्षक को व्यवहारिक मनोविज्ञान का जितना अधिक ज्ञान होता है, उतना ही अधिक वह जानता है कि कैसे पढ़ाये ।

इसी आधार पर पेस्टालाजी ने अध्यापकों के प्रशिक्षण पर बल दिया । सर जान एडम्स का प्रिय वाक्य था "The master taught John Latin "यह एक त्रिध्रुवीय दृष्टिकोण है । अध्यापक पहला ध्रुव है, शिष्य (John) दूसरा तथा तीसरा ध्रुव विषय वस्तु (Latin) या गुरू का ज्ञान है, जिसे वह किसी प्रकार शिष्य को स्थानान्तरित करना चाहता है । इसमें" शिष्य को जानना" अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है । इसी बात को रूसों ने कभी इस प्रकार कहा था "Education is not information,but formation of child's own nature."

नवीन शिक्षा के मनोवैज्ञानिक आधारों की आवश्यकता की आधार शिला भी इसी नीवं पर रखी हुई है कि शिक्षक और शिष्य के परस्पर सम्बन्ध मधुर, भावात्मक एवं प्रगाढ़ हो । महाविद्यालयों में इस सैद्धान्तिक रूप को व्यवहारिक या वास्तविक जामा पहनाना कुछ मुश्किल तो जरूर है किन्तु असम्भव नहीं । कारण स्पष्ट है कि यहाँ का शिक्षार्थी शिशु नही है । वह किशोर या नवयुवक है । यही नये शिक्षक के लिए चुनौती है, जो उसे स्वीकार करनी होगी किन्तु कौन किस प्रकार इसके प्रति किस प्रकार अन्तर्क्रिया करता है, वह व्यक्ति

विशेष पर तो निर्भर ही है, फिर भी ये मधुर सम्बन्ध कुछ कारकों पर आधारित होते है, जिनमें से कुछ निम्न प्रकार है ।

1- आर्थिक

2- राजनैनिक

3- सामाजिक

4- पारिवारिक

5- बौद्धिक

6- मनोवैज्ञानिक

इन कारकों में से सबसे महत्वपूर्ण कारक मनोवैज्ञानिक कारक है । यहाँ शिक्षक को विद्यार्थी के मनोविज्ञान का अध्ययन करना है (Psychology of Adolesence को जानना होगा । यही मनोविज्ञान शिक्षक को तथ्यों एवं सिद्धान्तों का खजाना प्रदान करता है , जो उसे अपनी व्यवसायिक आवश्यकताओं को पूर्ण करने में सहायता पहुचाता है विशेषत: महाविद्यालय शिक्षक के समक्ष और अधिक गम्भीर चेतावनी तथा समस्यायें होती है । क्योकि वह किशोरों के मध्य है । इसीलिए उसे उनकी ~~अभिवृत्तियों~~ अभिवृत्तियों, रूचियों, बौद्धिक योग्यताओं तथा मानसिक क्षमताओं को जानना होगा। इसीलिए कहा जाता है कि= शिक्षक और चिकित्सक दोनों का कार्य समान है । दोनो को निदान करना होता है । दोनों को मानव पदार्थ (Human Material (का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए और उन कलाओं का भी जो साधनों का सबसे अच्छा प्रयोग कर सके ।

Sunday Oct. 19, 1986: forenoon session

Model Lecture:Botany

Dr. D.D.Pant,
Retd.Prof. of Botany,
Allahabad University.

The keynote of Dr. D.D.Pant's lecture was Sir Hans Krebbs remark,"you cannot be a good teacher without research." He remembered with gratitude those great teachers,who dedicated themselves to their profession, and merged their identity with the subject - professor Birbal Sahni,Prof. John Walton of Glasgow and Prof. Thomas Lobah, and emphasised that to be a teacher is to be an advanced student.

Defining research as the search after truth,Dr. Pant explained how the first ingredient of research is to observe facts,and to assemble them. Hard work,unflickering devotion are required for this. To clamour for infrastructure and sophisticated instruments has become the fashion of the day, whereas, if zeal be there, equipment can be devised,and atmosphere can be built by organizing a group of dedicated workers. The second stage of research - developing concepts and generalizations - requires mental capacities of superior order. Real research is done, for the real advancement of knowledge, only in pure-aspects.

Dr.Pant, in the second part of his lecture,explained how he devoted years of research to trace down the Glossopteris-flora, and how it can be corelated with the theory of continental drift.

रविवार अक्टूबर 19, 1986, पूर्वान्ह सत्र

राष्ट्रीय शिक्षा नीति का क्रियान्वयन

डा0परमानन्द मिश्र, आई0ए0एस0,
विशेष सचिव (शिक्षा)
उत्तर प्रदेश।

डा0मिश्र ने विचार व्यक्त किए कि यह त्रिदिवसीय प्राध्यापक कार्यशाला भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति के क्रियान्वयन का ही एक भाग है, उच्च शिक्षा में कार्यरत अध्यापकों के लिए भी हर तीसरे वर्ष पुनर्बोधात्मक कार्यशाला आयोजित किए जाने की आवश्यकता पर बल दिया, क्योंकि ज्ञान विज्ञान के क्षितिज निरन्तर विस्तृत होते जा रहे हैं, तथा शिक्षा एक सतत प्रक्रिया है। उच्च शिक्षा में विशिष्टीकरण का महत्व है और विशिष्ट ज्ञान-विज्ञान का विकास विश्वविद्यालयों में सम्भव है। किन्तु प्रत्येक स्थान पर विश्वविद्यालय स्थापित नहीं किए जा सकते अतः महाविद्यालयों का दायित्व उच्च शिक्षा के वाहक के रूप में कार्य करना है। कार्यशाला की उपयोगिता तथा सामयिकता को देखते हुए डा0मिश्र ने विश्वास व्यक्त किया कि इस कार्यशाला में प्राध्यापक ज्ञान के नए आयामों, नई प्रक्रियाओं एवं शिक्षण-विधियों से परिचय प्राप्त करेंगे।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 के विषय में बहुधा अनेक प्रश्न पूछे जाते हैं--(1) इस नई शिक्षा नीति में नया क्या है? (2) क्या नवोदय विद्यालय वर्तमान पब्लिक स्कूल्स का ही दूसरा रूप होंगे, (3) पाठ्यक्रमों, शिक्षण विधियों में क्या नयापन लाया जावेगा? (4) नई शिक्षा नीति में शिक्षण संस्थाओं को क्या नई सुविधाऐं दी गयी है?-- वास्तव में किसी विषय की क्रमबद्ध तथा सुसंगत जानकारी प्राप्त करना अधिक महत्वपूर्ण है, उससे सहमति या असहमति व्यक्त करना उतना नहीं।

विकास एक सतत, क्रमबद्ध प्रक्रिया है। किसी भी नीति के क्रियान्वन का- चाहे वह वैज्ञानिक, औद्योगिक नीति हो या शिक्षा नीति

समय समय पर पुनरीक्षण तथा मूल्यांकन किया जाना एवं तदनुरूप भविष्य के लिए नीति निर्धारित करना आवश्यक होता है। विकास के क्रम के रूप में एवं सामयिक आवश्यकताओं को दृष्टिगत रखते हुए परिवर्तन किया जाना, एवं तद् नुसार नीति-निर्धारण किया जाना दोनों ही आवश्यक है, नया तो वास्तव में वह है, जो पहले से विद्यमान हो न हो, इस दृष्टि से शिक्षा के क्षेत्र में पिछले अनुभवों, क्रियान्वयन में कमियों के आधार पर जो नीति अब प्रतिपादित की गयी है, वही राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 है। इस नीति की तीन प्रमुख बातें निम्नांकित है:-

1. प्रारम्भिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण
2. शिक्षा के अवसरों की समानता एवं समाज के पिछड़े वर्गों की शिक्षा पर विशेष बल।
3. शिक्षण प्रक्रिया एवं पाठ्यक्रमों का पुनर्गठन

शिक्षा का सार्वभौमीकरण- किसी देश के विकास के स्तर का मूल्यांकन करते समय उस देश में शिक्षित व्यक्तियों का प्रतिशत भी महत्वपूर्ण है। कोठारी कमीशन की संस्तुतियों के आधार पर ही देश से निरक्षरता उन्मूलन की नीति प्रतिपादित की गयी थी। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में इस लक्ष्य को प्राप्त किए जाने पर बल दिया गया है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में 1.9 से 1.15 तक शिक्षा प्रणाली में परिवर्तन की आवश्यकता को समझाया गया है। अध्याय 3.2 से 3.12 तक उन अवधारणाओं का उल्लेख है जिनका क्रियान्वयन किया जाना है। इन्हीं का विस्तृत विवेचन अध्याय 4, 5 तथा 6 में किया गया है। वास्तव में राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 दस्तावेज किसी एक व्यक्ति की रचना नहीं, यह देश के शिक्षाविदों, विद्वानों एवं विचारकों द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में जिन मान्यताओं एवं लक्ष्यों की आवश्यकता समझी गयी है, उसी का समन्वित रूप है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 की कुछ अवधारणाओं का उल्लेख यहां पर समीचीन होगा जाति, वर्ण एवं लिंग के भेद-भाव बिना शिक्षा सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध हो, शिक्षा प्राप्ति के लिए व्यक्ति को कहीं जाना न पड़े, वरन शिक्षा उसके पास आवे। देश में समान शिक्षा का ढ़ांचा 10+2+3 लागू हो। शिक्षा जो अभी तक "स्टेट लिस्ट" में रहो अब "समवर्ती सूची" में सम्मिलित कर ली गयी है। शिक्षा का राष्ट्रीय पाठ्यक्रम तैयार किया जाय। इसी प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति में अन्तर्राज्यीय गतिशीलता पर, स्त्री शिक्षा तथा प्रौढ़ शिक्षा पर बल दिया गया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति की एक विशेषता है अनौपचारिक शिक्षा पर बल दिया जाना। शिक्षा में कार्यानुभव, सामाजिक दृष्टि से उपादेयतायुक्त शिक्षा, तथा शिक्षा का Vocationalization भी इसके विशिष्ट बिन्दु है। आर्थिक दृष्टि से पिछड़े किन्तु मेधावी ग्रामीण छात्रों के लिए नवोदय विद्यालयों की स्थापना भी राष्ट्रीय शिक्षा नीति में सम्मिलित है। इन सभी बिन्दुओं पर डा0 मिश्रा द्वारा विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया गया।

रविवार अक्टूबर 19, 1986: अपरान्ह सत्र

समापन भाषण

डा. ब्रजेश्वर वर्मा,
भूतपूर्व निदेशक, केन्द्रीय हिन्दी
संस्थान, आगरा।

अपने समापन-भाषण में प्रो. ब्रजेश्वर वर्मा ने कार्यशाला की उपादेयता को स्पष्ट करते हुए विचार व्यक्त किए कि वास्तव में शिक्षक-प्रशिक्षण का यह कार्य बहुत पहले आरम्भ हो जाना चाहिए था, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 में शिक्षक-प्रशिक्षण एवं पुनर्बोधात्मक कार्यशालाओं को नियमित रूप से आयोजित किए जाने की बात स्पष्ट की गयी है, यह शिक्षा निदेशक (उच्च शिक्षा) डा. सतीश चन्द्र गुप्त जी का उत्साह, तथा अन्तर्दृष्टि ही है कि उन्होंने यह कार्य जो विश्वविद्यालयों द्वारा किया जाना चाहिए था, शिक्षा निदेशालय द्वारा आरम्भ किया, हमारे विश्वविद्यालय स्वयं को महिमामंडित मानने की प्रवृत्ति के कारण इस विचार को आत्मसात न कर पाए इसे एक विडम्बना ही कहा जायेगा। मैं इस कार्यशाला के आयोजन के लिए शिक्षा निदेशक को साधुवाद देता हूं।

इस प्रशिक्षण कार्यशाला में भाग लेने वाले युवा-अध्यापक इसकी उपादेयता से परिचित हो गये होंगे वास्तव में विषय ज्ञान को शिक्षार्थियों के समक्ष प्रस्तुत करना भी एक कला है। आज हमारे अनेक महाविद्यालय ऐसे स्थानों पर हैं जहां उच्च शिक्षा के लिए आवश्यक सुविधाएं, अच्छे पुस्तकालय, प्रयोगशालाएं, शोध संस्थान नहीं है। इसी कारण उन महाविद्यालयों के शिक्षकों के लिए अपने ज्ञान में निरंतर वृद्धि करना दुष्कर नहीं, तो कठिन तो अवश्य ही होता है।

एक शिक्षक के लिए अपने कर्तव्य के सफल निर्वाह के लिए यह आवश्यक है कि वह स्वयं सदैव ज्ञान के प्रति जिज्ञासु रहे। सतत शिक्षा अध्यापकों के लिए भी आवश्यक है। आज हमारे अध्यापकों एवं विद्यार्थियों

के बीच अन्तर्क्रिया (Interaction) का अभाव है। दूसरी बात यह है कि शिक्षक जन्मजात होता है, बनाया नहीं जाता, फिर भी इस शिक्षक को बहुत कुछ सीखना पड़ता है। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार प्रतिभाशाली कवि यद्यपि जन्मजात होता, फिर भी उसे काव्य शास्त्र की कुछ विशिष्ट बातें सीखनी ही पड़ती हैं। एक अच्छा शिक्षक अपने शिक्षार्थी में ज्ञान के प्रति जिज्ञासा जाग्रत करता है। परन्तु दुर्भाग्य यह है कि आज भी शिक्षा का उद्देश्य मात्र अच्छी नौकरी प्राप्त करना है, ज्ञान अर्जित करना नहीं। यह सच है कि पिछले दशकों में हमारे विद्यालयों और महाविद्यालयों की संख्यात्मक वृद्धि हुई है। पर क्या हम यह निष्कर्ष नहीं निकाला जाना चाहिए कि समाज का शिक्षा के प्रति अनुराग बढ़ा है। इसके विपरीत शिक्षा के स्तर में निरन्तर गिरावट हो आती जा रही है। शिक्षा के संबंध में समय समय पर जो आयोग गठित हुए उनकी संस्तुतियों के क्रियान्वयन में भी आधा अधूरापन ही बना रहा।

शिक्षक भी सामाजिक व्यवस्था का ही एक अंग है। अतः यह कहा जाना कि चरित्र का निर्माण केवल अध्यापक ही कर सकते हैं, एक थोथा कथन है। चरित्र-निर्माण के लिए तो समग्र समाज में व्याप्त परिस्थितियां एवं उनके बीच होने वाली अन्तःक्रियाएँ ही उत्तरदायी हैं। यदि आज शिक्षक भौतिक समृद्धि को ही सब कुछ मान बैठा है, तो इसमें उसका दोष नहीं है। आज यही हमारे समाज की सामान्य चिन्तन धारा है।

यदि हमें शिक्षा को नई दिशा देनी है, इसे समाज से जोड़ना है, अपनी सांस्कृतिक अस्मिता को बनाए रखना है, अपनी शिक्षण संस्थाओं को सामाजिक परिवेश से सम्बद्ध करना है, तो हमें चुनौतियों को स्वीकार करना होगा। हमें यह सोचना होगा कि शिक्षा में परिवर्तन किस दिशा में किए जायें। इस चिन्तन के लिए हमारे अध्यापकों को तत्पर रहना होगा। समाज में जो चारित्रिक ह्रास दृष्टिगत होता है, उसे रोककर चारित्रिक मूल्यों को पुनर्स्थापना नई शिक्षा को करनी होगी।

महाविद्यालय प्रवक्ता प्रशिक्षण कार्यशाला का मूल्यांकन

इस प्रशिक्षण में कुछ 50 ऐसे प्रवक्ताओं को प्रशिक्षण हेतु बुलाया गया था जिनका सेवाकाल 5 वर्ष से कम रहा था परन्तु केवल 37 प्रशिक्षणार्थियों ने ही भाग लिया। प्रशिक्षण कार्यशाला के मूल्यांकन हेतु प्रयोग में लाया गया प्रपत्र परिशिष्ट-। है, सभी प्रशिक्षणार्थियों से रिपोर्ट मांगी गयी थी जिसमें प्रशिक्षणार्थियों द्वारा न तो नाम ही देने थे न हस्ताक्षर ही करने थे जिससे वह अपना मत नि:संकोच दे सकें।

कुल 37 प्रशिक्षणार्थियों में से 34 प्रशिक्षणार्थियों से मूल्यांकन रिपोर्ट प्राप्त हुई। शेष तीन प्रशिक्षणार्थियों द्वारा, किंचित कारण से पूरे प्रशिक्षण में उपस्थित न होने के कारण, अपना मूल्यांकन प्रपत्र प्रस्तुत नहीं किए। प्राप्त रिपोर्ट के आधार पर जो परिणाम निकले वह निम्न प्रकार है:-

(1) अधिकांश प्रशिक्षणार्थियों, अर्थात् 21 प्रशिक्षणार्थी की शिक्षा आवासीय विश्वविद्यालयों में हुई थी जिनमें से 5 काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 3 गोरखपुर विश्वविद्यालय, 5 इलाहाबाद विश्वविद्यालय, 2 काशी विद्यापीठ, 1 लखनऊ विश्वविद्यालय, 1 आगरा विश्वविद्यालय तथा 1 सेन्ट्रल यूनिवर्सिटी, हैदराबाद से शिक्षा ग्रहण किये थे। तीन प्रशिक्षणार्थियों द्वारा विश्वविद्यालय की सूचना नहीं भरी गयी थी। शेष 13 प्रवक्ता केवल महाविद्यालयों में शिक्षा प्राप्त किये थे।

(2) कुल 34 प्रशिक्षणार्थियों में 16 प्रशिक्षणार्थी केवल मास्टर डिग्री तक, 3 एम0फिल तथा 9 पी0एच0डी0 तक की अर्हता रखते थे। प्रशिक्षणार्थियों में से 6 के द्वारा अपनी शिक्षा का स्तर नहीं दिया गया था।

(3) 34 प्रशिक्षणार्थियों में प्रशिक्षण में आने से पहले 31 प्रशिक्षणार्थियों द्वारा शिक्षण तकनीकी का नया ज्ञान, 29 ने अध्यापकों के कर्तव्य का बोध, 21 ने विषय का आधुनिक ज्ञान तथा 32 प्रशिक्षणार्थियों ने शिक्षा जगत में नये परिवर्तनों की जानकारी होने की आशा की थी।

(4) दो प्रशिक्षणार्थियों द्वारा शतप्रतिशत, 12 प्रशिक्षणार्थियों द्वारा यह मत व्यक्त किया कि उनकी 75 प्रतिशत आशायें पूर्ण हो गयी जबकि 11 प्रशिक्षणार्थियों द्वारा 50 प्रतिशत, तथा 6 प्रशिक्षणार्थियों द्वारा 25 प्रतिशत अपेक्षायें कार्यशाला से प्राप्त होने का मत व्यक्त किया। तीन प्रशिक्षणार्थियों ने कोई मत व्यक्त नहीं किया।

(5) प्रशिक्षण के कमजोर पहलुओं को और इंगित करते हुए केवल 25 प्रशिक्षणार्थियों द्वारा यह मत व्यक्त किया गया कि प्रशिक्षण की अवधि कम थी। ग्यारह प्रशिक्षणार्थियों ने यह मत व्यक्त किया कि व्याख्यानकर्ताओं के चुनाव उचित नहीं थे। छः प्रशिक्षणार्थियों द्वारा शिक्षण की तकनीकी बोध एवं प्रति व्याख्यान के पश्चात शंकाओं के समाधान हेतु कम समय दिए जाने की शिकायत की। दो प्रशिक्षणार्थियों द्वारा यह कहा गया कि कार्य शाला में शिक्षक के आचरण नैतिकता एवं कर्तव्यों पर प्रकाश नहीं डाला गया है। प्रशिक्षण में 3 ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने यह मत व्यक्त किया कि प्रशिक्षण से कोई ज्ञान वर्धन नहीं हुआ। प्रशिक्षणार्थियों द्वारा शिक्षा को अधिक सुगम एवं सुरुचिपूर्ण बनाने, शिक्षकों का समाज के प्रति दायित्व, बोध संबंधी विषयों का चयन, आदर्श परीक्षा से संबंधित कार्य प्रणाली, मूल्यांकन आदि विषय पर व्याख्यान देने का मत दिया गया। प्रशिक्षण का माध्यम हिन्दी होने पर भी बल दिया गया। विषयों के माडल लेक्चर, विभिन्न विषयों का आधुनिकतम ज्ञान, शिक्षा के परिवर्तन आदि के संबंध में भी विशेष बल देने की अपेक्षायें की गयी।

(6) विभिन्न विद्वानों ने कार्यशाला में आये प्रवक्ताओं के मार्गदर्शन हेतु विभिन्न विषयों पर व्याख्यान दिए थे। उनमें से सर्वाधिक लगभग 50% ने डा० एस०सी०गुप्त, शिक्षा निदेशक उच्च शिक्षा के व्याख्यान "प्रिपेयरिंग फार क्लास लेक्चर्स, टीचर्स रोल इन आर्गनाइजिंग ट्यूटोरियल, सेमीनार, ग्रुप डिस्कशन आदि" को पसन्द किया है और प्रशंसा की है। शिक्षा निदेशक के कार्य

संचालन को भी प्रशिक्षणार्थियों द्वारा सराहना की गयी है। इसके अतिरिक्त प्रो०ए०डी०पन्त, निदेशक, जी०बी०पन्त, इंस्टीट्यूट, इलाहाबाद, डा०वाई०वी० सिंह निदेशक, इलाहाबाद एग्रीकल्चरल इन्स्टीट्यूट, नैनी इलाहाबाद, डा०पी० एन०मिश्र, विशेष शिक्षा सचिव, डा० टी०एस०पपोला तथा डा०के०एम०बहाउद्धीन से भी प्रभावित थे।

(7) सभी प्रशिक्षणार्थियों द्वारा इस प्रकार की कार्यशालाओं की आयोजना की आवश्यकता पर बल देते हुए इसे भविष्य में होते रहने का परामर्श दिया।

(8) प्रशिक्षणार्थियों द्वारा यह कार्यक्रम कम से कम 10 दिन से 15 दिन तक चलाने का अपना सुझाव दिया। विशेष अनुभवी व्याख्यान कर्ताओं को बुलाने, ग्रुप डिसकशन कराने तथा विभिन्न विषयों के प्रवक्ताओं का चयन करने संबंधी विद्वानों से व्याख्यान कराने का सुझाव दिया गया। एक दिन में अधिक से अधिक तीन व्याख्यान देने का सुझाव दिया गया। कुछ प्रशिक्षणार्थी द्वारा सुबह तथा सायंकाल के खाना की व्यवस्था कराने का भी सुझाव दिया गया। कालेज के प्राचार्यों को भी इस तरह के प्रशिक्षण देने का सुझाव दिया गया।

परिशिष्ट-1

उच्च शिक्षा निदेशालय द्वारा आयोजित प्रवक्ता प्रशिक्षण कार्यशाला का मूल्यांकन

नोट: 1. बिना किसी अन्य से परामर्श किए केवल अपनी प्रतिक्रिया अंकित करें
2. कृपया अपना नाम कहीं न लिखें और न हस्ताक्षर करें।

1. आपकी शिक्षा किस स्तर तक हुई है- मास्टर डिग्री/एम०फिल/पी०एच०डी०

2. क्या आप दिनांक 16 से 19 अक्टूबर, 1986 तक आयोजित समस्त कार्यक्रमों में उपस्थित रहे - हाँ/नहीं। यदि नहीं तो किन किन कार्यक्रमों में उपस्थित न हो सके.......................................

3. आपकी शिक्षा क्या किसी विश्वविद्यालयीय आवासीय विभाग में हुई है - हाँ/नहीं

4. यदि किसी विश्वविद्यालययी विभाग में पढ़े है- किस विश्वविद्यालय में.... .... कितने वर्ष....................

किस उपाधि हेतु...

5. कार्यक्रम में आने के पूर्व आपने इस कार्यशाला से क्या अपेक्षा की थी:-

क.	शिक्षण तकनीकी का नया ज्ञान होगा	-	हाँ/नहीं
ख.	अध्यापक के कर्तव्यों का बोध होगा	-	हाँ/नहीं
ग.	विषय का आधुनिकतम ज्ञान होगा	-	हाँ/नहीं
घ.	शिक्षा जगत में हो रहे परिवर्तनों की जानकारी होगी	-	हाँ/नहीं
ङ.	अन्य जो आपने अपेक्षा की हो	-	....

....

....

6. आपकी अपेक्षायें किस सीमा तक पूर्ण हुईं:-

100% 75% 50% 25% शून्य

7. प्रशिक्षण के पहलू जो आप कमजोर समझते हो (✓लगायें)

क.	व्याख्यान कर्ताओं का चुनाव उचित न था	....
ख.	शिक्षण तकनीकी का बोध नहीं हुआ	....
ग.	शिक्षक के आचरण, नैतिकता व कर्तव्यों का बोध नहीं हुआ	....
घ.	कोई ज्ञानवर्धन नहीं हुआ	....

Sub. National Systems Unit,
National Institute of Educational
Planning and Administration
17-B, Sri Aurobindo Marg, New Delhi-110016
DOC. No.....
Date.....

इ. प्रशिक्षण की अवधि कम थी .....

च. प्रति व्याख्यान के पश्चात शंकाओं के समाधान हेतु समय नहीं दिया गया। .....

छ. निम्नलिखित पहलुओं पर प्रकाश नहीं डाला गया .....

.....

8. किन 3 कार्यक्रमों से आप सर्वाधिक लाभान्वित हुए:

विषय	व्याख्यानकर्ता
क.	
ख.	
ग.	

9. आपके विचार से क्या इस प्रकार की कार्यशालायें नये प्राध्यापकों के लिए भविष्य में भी होनी चाहिए हाँ/नहीं

10. यदि आप इस कार्यशाला को उपयोगी मानते हों तो संक्षेप में कृपया व्यक्त करें कि भविष्य में कितनी अवधि का यह कार्यक्रम हो, किन किन कार्यक्रमों को और सम्मिलित किया जाए और वर्तमान कार्यक्रम के क्या क्या कार्यक्रम छोड़े जा सकते हैं, आदि।

.....

.....

.....

.....

नोट- नाम या हस्ताक्षर नहीं देना है।